1971 के बांग्लादेश नरसंहार में पाकिस्तानी सेना की भूमिका

ब्रिगेडियर आरपी सिंह, वीएसएम (सेवानिवृत्त)
हितेश सिंह

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation

1971 के बांग्लादेश नरसंहार
में
पाकिस्तानी सेना की भूमिका

1971 के बांग्लादेश नरसंहार में पाकिस्तानी सेना की भूमिका

ब्रिगेडियर आरपी सिंह, वीएसएम (सेवानिवृत्त)
हितेश सिंह

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation

इस प्रकाशन के किसी भी अंश का प्रतिलिपिकरण, ऐसे यंत्र में भंडारण जिससे इसे पुनः प्राप्त किया जा सकता हो या स्थानान्तरण, किसी भी रूप में या किसी भी विधि से, इलेक्ट्रॉनिक, यांत्रिक, फोटो–प्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग या किसी और ढंग से, लेखक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता।

प्रकाशक :
भारत नीति प्रतिष्ठान
डी–51, हौज खास, नई दिल्ली–110016 (भारत)
दूरभाष : 011–26524018
फैक्स : 011–46089365
ई–मेल : info@ipf.org.in, indiapolicy@gmail.com
वेबसाइट : www.ipf.org.in

© लेखक

ISBN : 978-93-84835-32-3

प्रथम संस्करण : दिसम्बर 2019

मूल्य : ₹100/-

मुद्रक

क्लिक अस इंडिया (ClickUsIndia)
clickusi@gmail.com
www.clickusindia.com

पुस्तक की सामग्री के लिए लेखक जिम्मेदार

आवरण फोटो सौजन्य : https://herald.dawn.com/

भूमिका

यूरोप और अमेरिका से इतर, भारतीय उप–महाद्वीप सदैव अपनी प्राचीन सभ्यता और परिष्कृत संस्कृति से गौरवान्वित रहा है। साहित्य, कला, संगीत, विज्ञान, वास्तुकला, चिकित्सा और आध्यात्मिकता हजारों सालों तक यहां फलती–फूलती रहीं, जब तक कि पश्चिम और मध्य एशिया के आक्रांताओं ने अखंड भारत पर अपने विनाशकारी हमले शुरू नहीं किए। मानव इतिहास में सबसे जघन्य, किंतु सबसे कम अध्ययन किए गए नरसंहार भारत में हुए, जिनमें दूसरी सहस्राब्दी के दौरान बाहर से आए क्रूर आक्रांताओं ने करोड़ों निर्दोष भारतीय पुरुषों, महिलाओं और बच्चों को मौत के घाट उतार दिया।

भारतीयों ने अपने ही जैसे दूसरे मनुष्यों से ऐसी क्रूरता की कभी कल्पना भी नहीं की थी। भारतीयों के लिए युद्ध और हिंसा कोई नई बात नहीं थी, लेकिन यहां युद्ध के लिए भी कुछ स्पष्ट नियम मर्यादा थी, थे जिनका पालन युद्ध के मैदान में भी किया जाता था। वैश्विक व्यापार, भौतिकतावादी समृद्धि और विभिन्न मत रखने वाले लोगों के साथ शांति से रहने की मान्यता के चलते भारत बाहरी आक्रांताओं के लिए एक आसान लक्ष्य बन गया। उस खूनी दौर में हत्या, बलात्कार और क्रूरता से डरकर लाखों भारतीयों ने इस्लाम अपना लिया। समय बीतने के साथ उनके आनुवांशिक प्रभावों और परवरिश के चलते उनके वंशज अपने पूर्वजों का उत्पीड़न करने वालों की तरह ही सोचने और व्यवहार करने लगे।

भारत के विभाजन के समय भी पश्चिमी और पूर्वी दोनों क्षेत्रों में उसी तरह क्रूरता, नरसंहार, बलात्कार, विनाश और अपहरण देखने को मिले जिस तरह उनके पूर्वजों को बाहरी आक्रांताओं के हाथों यातनाएं झेलनी पड़ी थीं। दस लाख से ज्यादा लोग मारे गए और लाखों महिलाओं के साथ क्रूरतापूर्वक बलात्कार और अत्याचार किए गए। इस भयंकर हिंसा से पाकिस्तान अस्तित्व में आया। बांग्ला भाषी मुसलमानों की मांग पर पूर्वी पाकिस्तान भी अस्तित्व में आया। मुस्लिम पंजाबियों के साथ धार्मिक जुड़ाव के आगे हिंदू बंगालियों के साथ भाषाई एकता फीकी पड़ गई। पाकिस्तान के दोनों हिस्सों के मुसलमान एक इस्लामिक राष्ट्र का हिस्सा बनकर खुश थे। लेकिन जल्द ही उनके बीच अविश्वास पैदा हो गया। धार्मिक बंधन उन्हें लंबे समय तक साथ नहीं रख सका। पश्चिमी पाकिस्तान के मुसलमान पूर्वी पाकिस्तान के मुसलमानों को कमतर मुस्लिम मानते थे, क्योंकि पूर्वी पाकिस्तान की संस्कृति में अविभाजित बंगाल और भारत का प्रभाव झलकता था।

दोनों के बीच की खाई लगातार बढ़ती गई और एक समय ऐसा आया जब पश्चिमी पाकिस्तान के सत्ता लोलुप राजनेताओं और सैन्य अधिकारियों ने पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को सबक सिखाने का फैसला किया। इसके परिणामस्वरूप क्रूरता, हत्या, बलात्कार, लूट और आगजनी का एक और भयानक नजारा देखने को मिला। इस बार ये जुल्म पाकिस्तान के सशस्त्र बलों ने अपने ही नागरिकों, मुस्लिमों और गैर–मुस्लिमों, दोनों पर किए थे। कुछ ही महीनों के भीतर लाखों निर्दोष लोगों को निर्दयता से मार दिया गया, महिलाओं का अपहरण किया गया और उन्हें सेक्स–गुलाम बनाया गया, लाखों लोगों को सुरक्षा के लिए भागकर मजबूरन भारत आना पड़ा। उनके परिवार बिछड़ गए और उनकी संपत्तियां और गरिमा क्रूर पाकिस्तानी सशस्त्र बलों और उनके स्थानीय गुर्गों ने नष्ट–भ्रष्ट कर दी।

जहां वैश्विक मीडिया और मानवीय संगठन लगातार लाखों निर्दोष लोगों की दुर्दशा और पाकिस्तानी सेना द्वारा पूर्वी पाकिस्तान के लोगों पर की जा रही बर्बरता को उजागर कर रहे थे, वहीं अमेरिका और चीन जैसे पाकिस्तान के कुछ सहयोगी देश न केवल इस क्रूर नरसंहार के मूकदर्शक बने रहे, बल्कि वे पीड़ित बांग्लादेशी लोगों के खिलाफ पाकिस्तानी नेताओं और मीडिया के अमानवीय एजेंडे और प्रोपेगंडा का समर्थन भी करते रहे।

आखिरकार, एक करोड़ से ज्यादा बांग्लादेशी शरणार्थियों के भारत में आ जाने के कारण, भारत को इस मामले में सैन्य हस्तक्षेप करना पड़ा और पाकिस्तानी सेना को एक अपमानजनक हार का सामना करना पड़ा। अंततः बांग्लादेश एक स्वतंत्र राष्ट्र बन गया।

बांग्लादेश में हुए इस नरसंहार का सबसे दुखद अध्याय वह रहा जिसमें लाखों मासूम लड़कियों और महिलाओं को प्रताड़ित किया गया, उन्हें महीनों तक बार–बार यातनाएं दी गईं और उनके साथ बलात्कार किया गया, जिसके परिणामस्वरूप अवांछित गर्भधारण और प्रसव हुए। आजादी के बाद भी इन दुर्भाग्यशाली महिलाओं को बिना किसी गलती के सामाजिक बहिष्कार और सार्वजनिक अपमान सहना पड़ा। इसके बाद उन्हें अपने 'युद्ध शिशुओं' को छोड़ने के लिए मजबूर किया गया और उन बच्चों को विदेशियों को गोद दिया गया क्योंकि वहां के उच्च स्तरीय राजनेता नहीं चाहते थे कि उनके नवगठित देश में कोई भी 'पाकिस्तानी बच्चा' रहे।

मानवता ने विज्ञान, प्रौद्योगिकी और संचार में काफी प्रगति की है। लेकिन इसकी वास्तविक प्रगति को केवल मनुष्यों, जानवरों और अन्य प्राणियों के जीवन के मूल्य के संदर्भ में ही मापा जा सकता है। जब तक ऐसा कोई विश्वास या विचार मौजूद है जो दूसरे प्राणी को मारकर गर्व महसूस करे और दूसरों के खिलाफ हिंसा करने व हिंसा को बढ़ावा देने वालों को दंडित करने से इंकार करे, तब तक मानवता को अपनी प्रगति पर गर्व नहीं करना चाहिए। लगभग पांच दशक बीत चुके हैं, लेकिन अभी तक पाकिस्तान ने 1971 के बांग्लादेश नरसंहार के लिए जिम्मेदार अपराधियों को दंडित नहीं किया है। दुनिया की सिविल सोसायटी और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को नरसंहार के दोषियों को सजा दिलाने के लिए पाकिस्तान पर दबाव बनाना चाहिए था। बांग्लादेश में हुए नरसंहार के लिए पाकिस्तान को दोषी ठहराने में दुनिया की इस विफलता से पाकिस्तान को इतना बढ़ावा मिला कि उसके बाद से वह आतंकवाद को प्रायोजित करने वाला देश बन गया, जिसका खामियाजा न केवल भारत को भुगतना पड़ा बल्कि दुनिया के कई देश इससे त्रस्त हैं। इतना ही नहीं, पाकिस्तान के कब्जे वाले कश्मीर, गिलगित–बाल्टिस्तान, ख़ैबर पख़्तूनख़्वा और बलूचिस्तान के लोगों को भी पाकिस्तानी सशस्त्र बलों की क्रूरता का शिकार होना पड़ा है। अतीत की बर्बरता ने एक नया आकार ले लिया है। मानवता इस क्रूर वास्तविकता को कब तक अनदेखा कर सकती है? बांग्लादेश नरसंहार हम सभी के लिए एक दर्दनाक स्मृति है। ब्रिगेडियर आर.पी. सिंह और हितेश सिंह द्वारा 1971 की घटनाओं का यह संकलन पाठकों को ऐसी प्रवृत्तियों की अनदेखी करने के खतरों के बारे में जागरूक करने का एक प्रयास है। मुझे आशा है कि उनका यह प्रयास इच्छित उद्देश्य की पूर्ति करने में सफल होगा।

– डॉ. कुलदीप रतनू
निदेशक
भारत नीति प्रतिष्ठान

16 दिसंबर 2019

वर्ष 1971 में पाकिस्तानी सशस्त्र बलों ने पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में स्थानीय जातीय समूहों, खासकर हिन्दुओं के सफाए के लिए एक बेहद क्रूर नरसंहार को अंजाम दिया। इसके दोषी 195 पाकिस्तानी युद्ध अपराधियों को कभी दंडित नहीं किया गया और आज भी बलूचिस्तान, पाक–अधिकृत कश्मीर, गिलगित–बाल्टिस्तान, ख़ैबर–पख़्तूनख़्वा और संघ शासित जनजातीय इलाकों में पाकिस्तानी सेना का वही रवैया जारी है। मानवाधिकारों का उल्लंघन पाकिस्तान में अपवाद नहीं बल्कि आम बात है।

तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में किए गए "ऑपरेशन सर्चलाइट" में पाकिस्तानी सेना द्वारा मासूम और निहत्थे नागरिकों पर की गई कार्रवाई उसके असली क्रूर चेहरे को उजागर करती है।

प्रतिदिन की जाने वाली हत्याओं की संख्या की दृष्टि से यह इतिहास का सबसे क्रूरतम सामूहिक नरसंहार था। 267 त्रासदी भरे दिनों में लगभग 30 लाख लोगों को मौत के घाट उतार दिया गया, चार लाख महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया और 70 हजार से ज्यादा अवांछित युद्ध शिशुओं (पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा किए गए दुष्कर्मों से जन्मे बच्चे) का जन्म हुआ। एक करोड़ शरणार्थियों को भारत में आकर शरण लेने के लिए मजबूर किया गया। पीड़ितों में ज्यादातर हिन्दू थे। पाकिस्तान द्वारा निहत्थे और मासूम लोगों के इस संहार पर अनेकों अध्ययन किए गए हैं। इस पुस्तक के मुख्य में से एक ब्रिगेडियर आरपी सिंह (सेवानिवृत्त) 1971 में भारतीय सेना के एक युवा कैप्टन थे। बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के पहले दिन (26 मार्च, 1971) से लेकर युद्ध के आखिरी दिन (16 दिसम्बर, 1971) तक वह खुद किसी न किसी भूमिका में सक्रिय रहे और विभिन्न दायित्वों का निर्वाह किया। उन्होंने पाकिस्तानी सैनिकों की बर्बरतम कार्रवाई खुद अपनी आंखों से देखी थी।

***

15 अगस्त को आजाद होने से पहले 14 अगस्त 1947 को ब्रिटिश भारत को दो देशों व तीन भौगोलिक इकाईयों में विभाजित किया गया। भारत के पूर्वी और पश्चिमी किनारों पर पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान का गठन हुआ, जिनमें आपस की दूरी 2000 किलोमीटर से अधिक थी और दोनों के बीच भारत था। धर्म के अलावा पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के लोगों में अन्य कोई समानता नहीं थी।

भारत का विभाजन 1945–46 में हुए केंद्रीय लोकसभा और प्रांतीय विधानसभा चुनावों के परिणामों के आधार पर हुआ था। चुनाव हिन्दू, मुस्लिम और सिखों आदि के लिए आरक्षित सीटों की व्यवस्था के तहत हुए थे। केंद्रीय लोकसभा में मुस्लिमों के लिए आरक्षित सभी 30 सीटें ऑल इंडिया मुस्लिम लीग (AIML) ने जीती थीं। मुस्लिम लीग ने प्रांतीय विधानसभा चुनावों

फोटो–1

Photo

में भी अधिकांश सीटों पर विजय हासिल की थी। केवल नॉर्थ वेस्ट फ्रंटियर प्रोविन्स (NWFP) ही ऐसा था जहां मुस्लिम लीग को ज्यादा सफलता नहीं मिली थी। वहां खान अब्दुल गफ्फार खान (फ्रंटियर गांधी के नाम से मशहूर) के नेतृत्व वाली फ्रंटियर कांग्रेस ने 46 में से 29 सीटें जीती थीं, जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की सहयोगी थी। NWFP में मुस्लिम लीग को महज 45 प्रतिशत वोट मिले थे जबकि बाकी भारत में उसे 82 से 100 प्रतिशत तक मुस्लिम वोट प्राप्त हुए थे। मद्रास और बॉम्बे प्रेसीडेंसी तथा ओडिशा में मुस्लिम लीग ने मुस्लिमों के लिए आरक्षित सभी सीटें जीती थीं। उसे यूनाइटेड प्रोविन्स में 82 प्रतिशत और सेंट्रल प्रोविन्स में 93 प्रतिशत मुस्लिम सीटें मिलीं थीं। इस प्रकार फर्जी धर्म–निरपेक्ष लोगों द्वारा फैलाई गई यह बात बिल्कुल गलत है कि भारत में रहने वाले मुस्लिमों ने दो देश के सिद्धान्त को नकार दिया था। बल्कि उन प्रान्तों में मुस्लिमों ने पाकिस्तान के गठन को लेकर ज्यादा उत्साह दिखाया था जहां वे अल्पसंख्यक थे।

हालांकि मुस्लिम लीग केवल बंगाल में ही सरकार बना पाई थी। पंजाब में कांग्रेस, अकाली दल और यूनियनिस्ट पार्टी तथा अन्य की गठबंधन सरकार बनी थी। सिंध में मुस्लिम लीग जीएम सईद की प्रोग्रेसिव मुस्लिम लीग को तोड़कर किसी तरह से गठबंधन सरकार बनाने में सफल हुई थी। एनडब्ल्यूएफपी में फ्रंटियर कांग्रेस ने सरकार बनाई, जिसका नेतृत्व फ्रंटियर गांधी के बड़े भाई व प्रथम विश्व युद्ध के पुराने योद्धा कैप्टन डॉ. खान अब्दुल जब्बार खान ने किया था। इन्हें खान साहब भी कहा जाता था। एनडब्ल्यूएफपी के लोग भारत से जुड़ना चाहते थे लेकिन जवाहर लाल नेहरू ने इस तथ्य को देखते हुए इंकार कर दिया था कि भारत और एनडब्ल्यूएफपी के बीच में पश्चिमी पाकिस्तान (200 किलोमीटर) होगा, जिसके चलते जमीनी जुड़ाव नहीं रह सकेगा। जबकि पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान के बीच 2000 किलोमीटर से ज्यादा भारतीय भूमि थी। इसके चलते फ्रंटियर गांधी नेहरू से इतने नाराज हो गए कि उन्होंने अपने जीवन में फिर कभी नेहरू से बात नहीं की और नेहरू के रहते वह कभी भारत नहीं आए। बलूचिस्तान (कलात) ब्रिटिश भारत का एक संरक्षित राज्य था, जिसे तत्कालीन ब्रिटिश भारत के वायसराय लॉर्ड लुईस माउंटबेटन ने 11 अगस्त 1947 को स्वाधीनता प्रदान की। बलूचिस्तान का अपना ध्वज था और कराची में उसका दूतावास था। कलात के खान भारत से संरक्षित राज्य का दर्जा चाहते थे लेकिन नेहरू ने आखिरकार 27 मार्च 1948 को इससे इंकार कर दिया और उसके अगले ही दिन पाकिस्तानी सेना ने धावा बोलकर उसे जबरन पाकिस्तान में मिला लिया। तभी से बलूचिस्तान के लोग 11 अगस्त को स्वाधीनता दिवस और 28 मार्च को काला दिवस के रूप में मनाते हैं।

22 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तानी सैनिकों ने कबाईलियों के भेष में जम्मू–कश्मीर रियासत पर हमला किया और पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर और गिलगित–बाल्टिस्तान पर गैर–कानूनी ढंग से कब्जा कर लिया। जब दुश्मन श्रीनगर एयर फील्ड तक पहुंच गया तब जम्मू–कश्मीर के महाराजा ने 26 अक्टूबर 1947 को भारत के साथ इन्स्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन पर हस्ताक्षर किए। इसके बाद 27 अक्टूबर को भारतीय सेना श्रीनगर एयर फील्ड पहुंची जिसने दुश्मन को पीछे धकेलना शुरू किया और पीओके की राजधानी मुजफ्फराबाद की आखिरी पहाड़ी श्रृंखला तक पहुंच गई। भारतीय सेना अपने मिशन के आखिरी चरण में थी, लेकिन नेहरू 1 जनवरी 1948 को इस मामले को संयुक्त राष्ट्र संघ (यूएनओ) में लेकर चले गए और बाद में यूएन की मध्यस्थता में युद्ध विराम को स्वीकार कर लिया, जो 1 जनवरी 1949 से प्रभावी हुआ।

गिलगित–बाल्टिस्तान में ब्रिटिश सेना का एक अधिकारी मेजर फिलिप्स ब्राउन जम्मू व कश्मीर की राजकीय सेना के साथ डेपुटेशन पर मौजूद था। उसने बगावत करते हुए वहां के राज्यपाल ब्रिगेडियर घनसारा सिंह की हत्या कर दी और नवंबर 1947 में गिलगित–बाल्टिस्तान के पाकिस्तान में विलय के लिए गैर–कानूनी ढंग से इन्स्ट्रूमेंट ऑफ एक्सेशन पर हस्ताक्षर किए। नेहरू ने गिलगित–बाल्टिस्तान और पीओके में सीजफायर को स्वीकार कर लिया।

नेहरू ने गिलगित–बाल्टिस्तान के राज्यपाल की हत्या और गिलगित–बाल्टिस्तान को पाकिस्तान में गैर कानूनी ढंग से विलय के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार विद्रोही मेजर ब्राउन को अभियुक्त तक नहीं बनाया जबकि खुद जम्मू–कश्मीर के महाराजा ने 26 अक्टूबर 1947 को पूरे राज्य का भारत में विलय किया था। इस तरह गिलगित–बाल्टिस्तान भारत का हिस्सा था। मेजर ब्राउन रिटायरमेंट के बाद 1959 में कोलकाता चला गया जहां वह एक निजी कंपनी में काम करने लगा। उसका अपराध तो मौत की सजा का था लेकिन नेहरू ने बगावत करने वाले इस पूर्व ब्रिटिश सैन्य अधिकारी के खिलाफ कुछ भी नहीं किया। हालांकि 1947 में गिलगित में सेना का हिस्सा रहे कुछ सिख सैनिकों ने कोलकाता में उसे पहचान लिया और उस पर हमला कर दिया। पूर्व सैनिकों ने उसे मरा हुआ मानकर छोड़ दिया, लेकिन ब्राउन की किस्मत अच्छी थी और एक डॉक्टर ने उसे बचा लिया। इस तरह पश्चिमी पंजाब और सिंध को छोड़कर अन्य किसी भी प्रांत की जनता ने पाकिस्तान का हिस्सा बनना नहीं चुना था। अवैध कब्जे वाले क्षेत्रों के लोग पिछले 72 वर्षों से पाकिस्तान से अलग होने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। विभाजन के परिणामस्वरूप 10 लाख से अधिक हिन्दू, सिख और मुस्लिम मारे गए और एक करोड़ से अधिक शरणार्थी पाकिस्तान में अपना सब कुछ छोड़कर सुरक्षा की तलाश में भारत भागने को मजबूर हुए थे।

***

पश्चिमी पाकिस्तान के लोग पूर्वी पाकिस্তান को एक उपनिवेश की तरह मानते थे। पाकिस्तान की बहुसंख्यक आबादी (56 प्रतिशत) पूर्वी पाकिस्तान में रहती थी, इसके बावजूद पहला प्रधानमंत्री लियाकत अली खान पश्चिमी पाकिस्तान से बना। राजधानी पश्चिमी पाकिस्तान में कराची को बनाया गया। पूर्वी पाकिस्तानियों के साथ हर स्तर पर भेदभाव किया जा रहा था,

फोटो–2

चाहे वह शिक्षा हो, स्वास्थ्य हो, नौकरियाँ हों, औद्योगिक विकास हो या सशस्त्र बलों व सिविल सेवाओं में भर्ती हो। पाकिस्तान की 70 प्रतिशत विदेशी आय का जरिया पूर्वी पाकिस्तान से निर्यात होने वाली चाय, जूट और अन्य वस्तुएं थीं जबकि यह पैसा पश्चिमी पाकिस्तान के विकास पर खर्च किया जाता था। अपनी मातृभाषा से बेहद प्रेम करने वाले बंगालियों पर जबरन उर्दू थोप दी गई। उन्हें बंगाली को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिलवाने के लिए

काफी संघर्ष करना पड़ा। जल्द ही पूर्वी पाकिस्तानियों का पाकिस्तान से मोहभंग होने लगा और वहां स्वायत्तता की मांग उठने लगी। वर्ष 1954 में पूर्वी पाकिस्तान में प्रांतीय विधानसभा चुनावों में आवामी लीग और अन्य क्षेत्रीय पार्टियों को बड़ी जीत हासिल हुई। बंगालियों ने दो देश के सिद्धांत को अस्वीकार कर दिया था, जो पाकिस्तान के जन्म का आधार था। सैन्य तानाशाह अयूब खान ने उनके लोकतान्त्रिक अधिकारों को खत्म कर दिया लेकिन बंगालियों ने स्वायत्तता के लिए संघर्ष जारी रखा।

दोनों क्षेत्रों के बीच समानता के मुद्दे पर आवामी लीग नेता शेख मुजीबुर्रहमान ने वर्ष 1966 में 6 सूत्रीय कार्यक्रम की मांग की। इसके बदले उन्हें मनगढ़ंत अगरतला षड़यंत्र मुकदमे में फंसा दिया गया। शेख मुजीबुर्रहमान पर आरोप लगाया गया कि उन्होंने भारतीय राज्य त्रिपुरा की राजधानी अगरतला में भारत की मदद से पूर्वी पाकिस्तान को अलग करने की योजना बनाई थी। लेकिन शेख मुजीब के समर्थन में जन सैलाब उमड़ पड़ा, बड़े आंदोलन हुए जिसने सैन्य तानाशाह को मामले वापस लेने और मुजीब को ससम्मान रिहा करने को मजबूर कर दिया। साथ ही अयूब खान, जनरल याह्या खान को सत्ता सौंपने के लिए मजबूर हो गया। इस घटना से शेख मुजीब का कद बढ़ा। वह पूर्वी पाकिस्तान में गरीबों और शोषितों के मसीहा बन गए और युवाओं के लिए आदर्श।

संयुक्त पाकिस्तान में सभी मतदाताओं को वोट के अधिकार के साथ पहले स्वतंत्र एवं निष्पक्ष आम चुनाव दिसम्बर 1970 में कराए गए थे। शेख मुजीब की आवामी लीग को पूर्वी पाकिस्तान की 169 सीटों में से 167 सीटों पर बड़ी जीत मिली और 314 सदस्यीय पाकिस्तान नेशनल असेंबली में पूर्ण बहुमत मिला। लेकिन पश्चिमी पाकिस्तानियों ने पूर्वी पाकिस्तानियों अर्थात बंगालियों को सत्ता नहीं सौंपी। याह्या खान ने जुल्फिकार अली भुट्टो के साथ मिलकर बंगाल से उठ रहे विद्रोह को दबाने के लिए सैन्य कार्रवाई शुरू करने का फैसला किया। दिसंबर 1967 में अगरतला षड्यंत्र मामले के समय से पूर्वी पाकिस्तानियों द्वारा शुरू किए गए बड़े आंदोलन को पाकिस्तान की सत्ता कुचलने की कोशिश में लगी हुई थी। पाकिस्तानी जनरलों का यह मानना था कि बंगालियों को नियंत्रित करने के लिए यही एकमात्र उपाय है। सबसे पहली योजना 1969 में लेफ्टिनेंट जनरल साहिबजादा याकूब खान ने तैयार की थी। इस अभियान का नाम 'ऑपरेशन ब्लिट्ज' रखा गया था। उसने अपनी डायरी में लिखा था कि वह 'पूर्वी पाकिस्तान के हरे–भरे मैदानों को लाल' देखना चाहता है।

शेख मुजीब को सबसे ज्यादा सीटें जीतने के बाद भी पाकिस्तान के प्रधानमंत्री का पद नहीं दिया गया और याह्या खान ने 1 मार्च 1971 को नेशनल असेंबली का सत्र स्थगित कर दिया। इसके बाद शेख मुजीब ने बड़े पैमाने पर नागरिक अवज्ञा आंदोलन शुरू किया। इस आंदोलन की सफलता के बाद सैनिकों की आवश्यकता का फिर से आंकलन किया गया। सैनिक पश्चिमी पाकिस्तान से नागरिक हवाई जहाजों में भर–भर कर श्रीलंका, बर्मा (म्यांमार), भूटान और नेपाल के रास्ते पूर्वी पाकिस्तान पहुंचने लगे। हथियार और रसद कोलंबो के रास्ते समुद्र से पहुंचाया गया। इस तैयारी से पूर्वी पाकिस्तान हटाने के लिए राष्ट्रपति याह्या खान 15 मार्च 1971 को ढाका आया। इसका मकसद यह दिखाना था कि जुल्फिकार अली भुट्टो ने शेख मुजीब को प्रधानमंत्री बनने से रोक कर जो गतिरोध पैदा किया है वह उसे खत्म करना चाहता

फोटो–3

है। जब पूर्वी पाकिस्तान में सेना की कमान संभालने वाले लेफ्टिनेंट जनरल टिक्का खान ने याह्या खान को ब्रीफ किया, तो उसने जवाब में कहा कि "कोई चिंता ना करें, मैं कल मुजीब से बात करूंगा और मेरे दिमाग में क्या चल रहा है उससे कुछ अवगत कराऊंगा.... हालांकि बहुत गर्मजोशी नहीं दिखाऊँगा और उसे दोपहर के खाने पर भी नहीं बुलाऊंगा। उसके बाद अगले दिन मैं उसका बर्ताव देखूंगा। अगर मुजीब नहीं माना तो मुझे पता है क्या करना है।" कुछ समय के लिए असहज स्थिति के बाद लंबे कद का एक अधिकारी उठा और कुछ कहने की अनुमति मांगी। याह्या खान ने सहमति में सिर हिलाया। अधिकारी ने कहा "सर स्थिति बेहद नाजुक है। यह निश्चित तौर पर राजनीतिक मुद्दा है और इसका हल राजनीतिक ढंग से ही निकाला जाना चाहिए अन्यथा हजारों पुरुष, महिलाएं और बच्चे तबाह हो जाएंगे।" याह्या खान ने पूरी गंभीरता से उसकी बातें सुनी और सिर हिलाते हुए बोला कि "मुझे पता है।" वह अधिकारी फिर से बैठ गया। कुछ ही दिनों बाद उस अधिकारी मेजर जनरल मिट्ठा को छुट्टी पर भेज दिया गया। (1)

17 मार्च को शेख मुजीब और याह्या खान की मुलाकात के बाद लेफ्टिनेंट जनरल टिक्का खान ने राष्ट्रपति से मुलाकात की। याह्या खान ने उससे कहा कि "हरामी ठीक से बर्ताव नहीं कर रहा... तुम तैयार हो जाओ।" टिक्का खान ने मेजर जनरल खादिम हुसैन रजा को रात में 10 बजे फोन किया और कहा, "खादिम आप अब आगे बढ़ सकते हो।" यह सैन्य अभियान शुरू करने के लिए संकेत था। 18 मार्च को मेजर जनरल खादिम हुसैन रजा और मेजर जनरल राव फरमान अली ने मेजर जनरल साहिबजादा याकूब खान द्वारा तैयार किए गए 'ऑपरेशन ब्लिट्ज' की समीक्षा की। उन्होंने पाया कि वह अभियान अब काम नहीं आएगा क्योंकि स्थितियाँ पूरी तरह बदल चुकी थीं। अब शेख मुजीब के असहयोग आंदोलन को बड़ा जन समर्थन प्राप्त हो चुका था। नया प्लान 'ऑपरेशन सर्चलाइट' तैयार किया गया और 20 मार्च 1971 को सेना प्रमुख जनरल अब्दुल हामिद खान तथा लेफ्टिनेंट जनरल टिक्का खान के सामने रखा गया। 23 मार्च को राष्ट्रपति याह्या खान ने इस पर अपनी स्वीकृति दे दी।

25 मार्च 1971 को सुबह 11 बजे लेफ्टिनेंट जनरल टिक्का खान ने मेजर जनरल खादिम को फोन कर कहा "खादिम आज रात को"। 25 मार्च की शाम को याह्या खान ढाका कैंटोनमेंट में फ्लैग स्टाफ हाउस पहुंचा जहां जनरल टिक्का खान के साथ उसे चाय पीनी थी। रात होने से पहले राष्ट्रपति का काफिला पूरे लाव लश्कर के साथ राष्ट्रपति भवन की ओर चल पड़ा जिसमें पाइलट जीप, सुरक्षा दस्ता और चार सितारा वाली राष्ट्रपति की कार शामिल थी। कार के बोनट पर झण्डा भी लहरा रहा था। लेकिन पूर्व नियोजित षड्यंत्र के अनुसार राष्ट्रपति याह्या खान के स्थान पर एक ब्रिगेडियर को राष्ट्रपति की उस कार मे भेजा गया। रात के अंधेरे में राष्ट्रपति याह्या खान, टिक्का खान के निवास से चुपचाप ढाका हवाई अड्डे पहुंचा, जहां वह एयरफोर्स के गेट से अन्दर घुसा और विमान से कराची के लिए निकल गया। (2)

ऑपरेशन सर्चलाइट की कमान टिक्का खान के ही हाथों में थी। 26 मार्च 1971 का दिन चुना गया। याह्या खान के 1969 में राष्ट्रपति का पद संभालने की दूसरी वर्षगांठ भी इसी दिन थी। राष्ट्रपति के विमान ने जैसे ही उड़ान भरी, कुछ ही समय बाद वेटर आया और पूछा कि वह क्या पीना पसंद करेंगे, याह्या ने अपनी पसंदीदा स्कॉच विस्की लाने को कहा। वह अपने ड्रिंक का आनंद ले रहा था और जब जहाज श्रीलंका के ऊपर 40 हजार फीट की ऊंचाई पर उड़ रहा था, विमान का कैप्टन उसके सामने आया और सैल्यूट करने के बाद याह्या को सूचित किया कि ऑपरेशन सर्चलाइट शुरू हो गया है। (3) 26 मार्च 1971 की भोर में जब याह्या का विमान कराची पहुंचा, तब तक हजारों मासूम बांग्लादेशी मारे जा चुके थे।

ऑपरेशन सर्चलाइट शुरू किए जाने से पहले ही सभी विदेशी पत्रकारों को पूर्वी पाकिस्तान से बाहर भेज दिया गया था। लेकिन कुछ विदेशी पत्रकार वहीं पर छिपने में सफल रहे थे। उन्हीं में से एक थे सिमोन ड्रिंग, जिन्होंने एक रिपोर्ट भेजी जो वाशिंगटन पोस्ट में 30 मार्च 1971 को प्रकाशित हुई। सिमोन ने लिखा था, "मध्य रात्रि के ठीक बाद द्वितीय विश्व युद्ध के लिए अमेरिका द्वारा निर्मित एम–24 टैंक के साथ सैनिकों की एक टुकड़ी ने तेजी से ढाका विश्वविद्यालय पर हमला कर दिया। सेना के इस दस्ते ने ब्रिटिश काउंसिल लाइब्रेरी को अपने कब्जे में ले लिया और यहीं से विद्यार्थियों के आवासों पर गोले बरसाने शुरू किए। यह घटना बेहद चौंकाने वाली थी। सरकार विरोधी छात्र संघ के दफ्तर इकबाल हाल में तकरीबन 200 छात्र मार दिए गए। इसके दो दिन बाद भी धधकते कमरों में शव सुलग रहे थे, कुछ इधर–उधर बिखरे हुए थे और बड़ी संख्या में पास की झील में बह रहे थे। कला के एक छात्र का शव उसी की चित्रकारी पर ही पड़ा था। सेना ने ज्यादातर शवों को हटा दिया था लेकिन 30 शव अभी भी वहीं पड़े हुए थे। एक अन्य हॉल में जल्दबाजी में खोदी गई सामूहिक कब्र में सेना ने बड़ी संख्या में मृतकों को दफना दिया और बाद में टैंक्स से उसे रौंद डाला। विश्वविद्यालय के आसपास रहने वाले लोग भी इस गोलीबारी की चपेट में आए। रेलवे लाइन के समीप 200 गज तक घरों को तहस–नहस कर दिया गया। सेना ने नजदीकी बाजार को भी उजाड़ दिया। शहर में हर तरफ कोहराम मच गया, जगह–जगह से आग की लपटें उठने लगीं। सेना ने विश्वविद्यालय और आसपास के इलाकों को अपने कब्जे में ले लिया था। कुछ इलाकों में अभी भी भारी गोलीबारी जारी थी। सुबह होने से कुछ समय बाद गोलाबारी काफी हद तक बंद हो गई। सुबह हुई और सूरज निकला लेकिन पूरे शहर में डरावना सन्नाटा पसर गया। सिर्फ कौवे बोल रहे थे और रुक–रुक कर सेना के गश्ती दल या टैंकों की आवाजें सुनाई दे रही थीं।"

सिमोन ड्रिंग ने इंग्लिश रोड, फ्रेंच रोड, नियार बाजार और सिटी बाजार में हुए नरसंहार के बारे में लिखा, "सुनसान नजर आ रही गली के आखिरी छोर पर वे अचानक नजर आए। अभियान की अगुवाई कर रही टुकड़ी के पीछे सैनिक थे जिनके पास गैसोलीन के कनस्तर थे। जो भी भागने की कोशिश कर रहे थे उन्हें गोली मार दी गई और जो वहीं रहे उन्हें जिंदा जला दिया गया। दोपहर 12 से लेकर 2 बजे के बीच लगभग 700 पुरुषों, बच्चों और महिलाओं का कत्ल कर दिया गया। शनिवार सुबह रेडियो से घोषणा की गई कि कर्फ्यू में सुबह सात बजे से शाम चार बजे तक ढील दी जाएगी। दिलचस्प है कि शहर में जनजीवन सामान्य होने लगा हालांकि अफरा–तफरी तब भी थी, लोग डरे हुए थे। सुबह के दस बजे पुराने शहर के बड़े हिस्से और

फोटो–4

कुछ दूर औद्योगिक इलाकों में काले धुएं की चादर छाई हुई थी। गलियों में लोग बड़ी तादाद में दिखाई दे रहे थे, जो शहर छोड़कर जा रहे थे। कुछ कार से, कुछ रिक्शे से लेकिन ज्यादातर पैदल। अपने जरूरी सामान साथ लिए ढाका के लोग भाग रहे थे। दोपहर तक शरणार्थियों की संख्या हजारों में पहुंच गई। वे चुपचाप सेना की करतूतों को देखते हुए चेहरे पर शून्य भाव लिए चले जा रहे थे। वे अपना मुंह दूसरी तरफ करके चलते रहे। एक बाजार के पास अचानक गोली चलने की आवाज सुनाई दी। कुछ ही सेकंड में दिलों में खौफ लिए लगभग 2000 लोग वहां से अपनी जान बचाने के लिए भागते हुए दिखाई दिए। शनिवार को दोपहर तकरीबन चार बजे गलियां फिर से खाली हो गईं। अनेक लोगों ने नदी के रास्ते भागने की कोशिश की ताकि सड़कों की भीड़ से बच सकें, लेकिन कर्फ्यू की छूट समाप्त होने पर वे फंस गए। ऐसा ही एक समूह शनिवार की दोपहर जिस जगह पर बैठा हुआ था, अगली सुबह वहां सिर्फ खून के धब्बे थे। सेना के इस क्रूर अभियान का संगठित विरोध बमुश्किल ही दिखाई दे रहा था। यहां तक कि पश्चिमी पाकिस्तानी अधिकारी इसके विरोध में बोलने की किसी भी सम्भावना पर हंस रहे थे, मजाक उड़ा रहे थे। एक पंजाबी लेफ्टिनेंट ने कहा, "कोई भी विरोध में आवाज नहीं उठा सकता। अगर वे ऐसा करेंगे तो हम उन्हें मौत के घाट उतार देंगे। वे गद्दार हैं, हम नहीं। हम अल्लाह और एक संयुक्त पाकिस्तान के लिए लड़ रहे हैं।" सिमोन ड्रिंग की यह रिपोर्ट बांग्लादेशी नरसंहार के बारे में विश्व के लिए पहली विश्वसनीय खबर थी। इसके बाद अगले 9 महीनों तक ऐसी सैकड़ों कहानियां बांग्लादेश से आती रहीं।

ब्रिगेडियर (1971 में मेजर) सिद्दीक सालिक 1971 में बांग्लादेश में इंटर–सर्विसेज पब्लिक रिलेशन्स के प्रभारी अधिकारी थे। उन्होंने बांग्लादेश में हुई इस क्रूरता का वर्णन अपनी पुस्तक 'विटनेस टू सरेंडर' में किया है। उन्होंने लिखा, "मैंने बरामदे से चार घंटों तक वह खौफनाक मंजर देखा। इस रात की सबसे अहम बात थी कि आग की लपटें आसमान को छू रही थीं। समय–समय पर धुएं के बादल भी दिखाई दे रहे थे लेकिन जल्द ही आग की लपटें उन पर हावी हो जाती थीं। आग की लपटें ऐसे उठ रही थीं कि मानो वह आसमान के सितारों को चूम लेना चाहती हों। चाँद की चाँदनी और सितारों की रोशनी मनुष्य द्वारा फैलाई गई इस ज्वाला के आगे फीकी पड़ रही थीं। धुएं और आग की सबसे ऊंची लपटें विश्वविद्यालय परिसर से उठ रही थीं। इसके अलावा शहर के कुछ अन्य स्थानों पर, जैसे कि एक अंग्रेजी अखबार 'द पीपुल' के परिसर में, भी जबरदस्त आगजनी दिख रही थी। रात के लगभग 2 बजे अचानक जीप में लगे वायरलेस सेट ने हमारा ध्यान अपनी ओर खींचा। मुझे वायरलेस पर बात करने का आदेश दिया गया। दूसरी ओर से कैप्टन ने कहा कि उसे इकबाल हॉल और जगन्नाथ हॉल में काफी विरोध का सामना करना पड़ रहा है। तभी एक सीनियर

अधिकारी ने रिसीवर मुझसे छीन लिया और कैप्टन से पूछा कि 'लक्ष्य हासिल करने में और कितना समय लगेगा?'...'चार घंटे!'... 'नॉनसेंस... कौन से हथियार हैं तुम्हारे पास?'... 'रॉकेट लॉन्चर, रिकोइलेस राइफल्स, मोर्टार और'...'ठीक है सभी हथियारों का इस्तेमाल करो और सुनिश्चित करो कि अगले 2 घंटों में यह स्थान पूरी तरह से नियंत्रण में आ जाए।'... 26 मार्च को सूरज की पहली किरण के साथ ही पाकिस्तानी सैनिकों ने मिशन पूरा होने की रिपोर्ट भेजी। जनरल टिक्का खान सुबह 5 बजे अपने सोफे से उठा और थोड़े समय के लिए अपने ऑफिस गया। जब वह अपने चश्मे को रुमाल से साफ करते हुए और क्षेत्र का मुआयना करते हुए वापस आया तो उसने कहा, 'ओह! यहां कोई भी नहीं बचा।' बरामदे में खड़े होकर मैंने उसे अपने आप से बातें करते हुए सुना और पुष्टि करने के लिए इधर–उधर देखा। मुझे एक आवारा कुत्ता दिखाई दिया जो अपनी पूंछ को अपनी पिछली टांगों के बीच दबाए हुए चुपचाप शहर की ओर जा रहा था।"

सिद्दीक सालिक ने लिखा, "मैं विश्वविद्यालय परिसर में बनी सामूहिक कब्रों का मुआयना कर रहा था, जहां मुझे 5 से 15 मीटर व्यास के तीन गड्ढे दिखाई दिए। वह गड्ढे ताजी मिट्टी से भरे गए थे। लेकिन कोई भी अधिकारी मृतकों की सही संख्या बताने को तैयार नहीं था। विश्वविद्यालय से मैं ढाका शहर के प्रिंसिपल रोड पहुंचा जहां मैंने फुटपाथ और गलियों के मोड़ पर अनगिनत लाशें देखीं। वहां मैंने अजीब सी वीरानगी और भयावहता का अनुभव किया। मुझे नहीं पता कि इसका क्या मतलब था, लेकिन मैं ज्यादा देर तक उसे नहीं सह सका। मैं वहां से किसी और इलाके में चला गया। मैं धनमोंडी पहुंचा जहां मैं मुजीब के घर गया। वह पूरी तरह बिखरा पड़ा था। ऐसा लग रहा था जैसे घर के कोने–कोने की तलाशी ली गई हो। वहां मुझे कुछ भी ऐसा नहीं मिला जो याद रह सके, सिवाय फर्श पर पड़े रवींद्रनाथ टैगोर के एक आदम कद चित्र के। उसका फ्रेम कई जगहों से टूटा हुआ था लेकिन चित्र पूरी तरह दुरुस्त था। मैं वहां से लंच के लिए कैंटोनमेंट वापस चला गया। वहां का वातावरण बिल्कुल ही अलग था। शहर की त्रासदी से सेना के जवानों और उनके परिजनों को एक अलग ही सुकून मिला था। ऑफिसर्स मेस में सेना के अधिकारी सहज स्थिति में एक–दूसरे से बातें कर रहे थे। संतरा छीलते हुए कैप्टन चौधरी ने कहा, 'बंगालियों का मामला ढंग से निपट गया है, कम से कम एक पीढ़ी के लिए'। मेजर मलिक बोले, 'हाँ वे केवल ताकत की भाषा समझते हैं। उनका इतिहास यही कहता है।"

जब बड़े कस्बों को साफ कर लिया गया उसके बाद पाकिस्तानी सेना ने देश के अन्य इलाकों में आगे बढ़ना शुरू किया। उसने हर जगह बर्बादी फैलाई। बड़ी तादाद में सेना की टुकडियां छोटे–छोटे कस्बों और गांवों तक पहुंची। ब्रिगेडियर सिद्दीक सालिक ने इन अभियानों में से कुछ का जिक्र अपनी पुस्तक में किया है। वह 1 अप्रैल 1971 को ढाका से टैंगेल जा रही एक टुकड़ी के साथ थे। उन्होंने लिखा, "मुख्य सैन्य दस्ता मेन रोड की तरफ चला गया। सैनिकों ने वाहनों पर अपनी मशीन गन लगा रखी थी, जो ऑटोमेटिक फायरिंग के लिए तैयार थीं। जैसी प्रक्रिया सेनाएं युद्ध में अपनाती हैं, इस टुकड़ी की दो कंपनियां 500 मीटर में कतार के रूप में फैलकर चल रही थीं। सेना की इस टुकड़ी के पीछे फील्ड गन का दस्ता था, जो अपने आगे बढ़ने की दिशा में ही रुक–रुक कर गोले बरसा रहा था ताकि बांग्लादेशी भयभीत होते रहें। पैदल दस्ते को जहां भी किसी के होने का जरा सा भी शक हुआ उसने गोलियां चला दीं।

टैंगेल रोड पर काराटी से कुछ पहले एक छोटा सा क्षेत्र था जिसका शायद ही कोई नाम रहा होगा। वहां पेड़ों व झाड़ियों में जरा सी सरसराहट या घरों में थोड़ी सी भी हलचल होने पर सेना ऑटोमेटिक फायरिंग कर देती थी या कम से कम राइफल से गोली तो जरूर चला देती थी। दस्ता धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा था, यह सुनिश्चित किया जा रहा था कि आसपास के घरों और खुले इलाकों में कहीं कोई है तो नहीं। गोलीबारी के चलते हुई गर्मी से अचानक एक बांस चटक गया। उसकी आवाज सुनकर सभी को लगा जैसे यह यहां छिपे किसी 'अराजक तत्व' की राइफल से निकली हुई गोली की आवाज है। इसके बाद देखते ही देखते सेना की तरफ से भारी गोलीबारी होने लगी। सभी हथियार पेड़ों के बीच गोलियां बरसाने लगे। उस टुकड़ी के कमांडर को जब यकीन हो गया कि खतरा टल गया है, तब उसने सावधानीपूर्वक तलाशी का आदेश दिया। तलाशी करने वाली टुकड़ी ने पाया कि वहां कोई भी जीवित या मृत व्यक्ति नहीं था। एक बांस के चटकने की आवाज ने इस टुकड़ी के अभियान में देरी करवा दी थी।" (4)

सिद्दीक ने आगे लिखा, "अब बारी थी मोटे–मोटे जंगली पेड़ों से घिरे काराटी कस्बे की। यहां एक चर्चित स्थानीय बाजार था जिसमें दुकानें एक कतार में थीं। लोग अपने घरों से पहले ही भाग गए थे। सेना की टुकड़ी वहां ठहरी और पूरे कस्बे का सर्वेक्षण किया। फिर कुछ मिट्टी के तेल के ड्रमों समेत पूरे बाजार को आग के हवाले कर दिया। देखते ही देखते यह इलाका आग की तरह धधकने लगा। हरे पेड़ों की शाखाएं भी जलने लगीं और आसमान में धुएं का गुबार छा गया। इसके बाद सैनिक वहां नहीं रूके और आगे बढ़ गए। मैं वहां मिट्टी के एक झोपड़े में गया, यह देखने के लिए कि लोग यहां कैसे रहते थे। वह झोपड़ा अंदर मिट्टी से लीपा गया था जिसका रंग हल्का भूरा सा था। सामने की दीवार पर दो बच्चों का एक चित्र टंगा हुआ था, जो शायद भाई थे। अंदर एक चारपाई थी और ताड़पत्र से बनी चटाई बिछी हुई थी। चटाई पर मुट्ठी भर उबले हुए चावल बिखरे पड़े थे, जिन पर छोटे बच्चों की उंगलियों के निशान थे। वह अब कहां चले गए? क्यूँ चले गए? मैं इसी पसोपेश में था कि अचानक कुछ आवाज सुनकर मैं चौंका। सैनिकों और एक वृद्ध बंगाली नागरिक के बीच जोर–जोर से बहस हो रही थी। सैनिको को वह बूढ़ा आदमी केले के पेड़ों के नीचे मिला था। उस वृद्ध व्यक्ति ने पाकिस्तानी सैनिकों को 'बदमाशों' (जिन्हें मुक्ति बाहिनी गुरिल्ला कहा जा रहा था) के बारे में कुछ भी बताने से इंकार कर दिया। सैनिकों द्वारा उसे धमकी दी गई कि अगर उसने सहयोग नहीं किया तो उसे मार दिया जाएगा। मैं भी यह देखने वहां चला गया कि आखिर हो क्या रहा है। मैंने देखा कि वह वृद्ध बंगाली एक चलते–फिरते कंकाल के समान दिख रहा है। उसने अपनी कमर पर एक मटमैली लुंगी लपेट रखी थी। दाढ़ी से भरा उसका चेहरा घबराया हुआ था। मेरी आंखें उसके अर्ध नग्न शरीर का अवलोकन करते हुए उसके पैरों की तरफ गईं। धूल से सने हुए उसके पांवों की नसें फूली हुई थीं। उसे लगा मैं जिज्ञासु हूं, वह मेरी तरफ मुड़ा और बोला, 'मैं बहुत गरीब आदमी हूं। मुझे नहीं पता कि क्या करना है। थोड़ी देर पहले, वे (मुक्ति बाहिनी गुरिल्ला) यहां थे। उन्होंने मुझे धमकी दी थी कि अगर मैंने किसी को कुछ बताया तो वह मुझे जान से मार देंगे। अब आप भी यही कह रहे हैं कि अगर उनके बारे में नहीं बताया तो आप मार देंगे।' उसकी बातें आम बंगाली की दुविधा बयान कर रही थीं।" (5)

सिद्दीक सालिक पाकिस्तानी सेना का अधिकारी था इसलिए उसने बांग्लादेश नरसंहार का पूरा विवरण नहीं दिया। हैवानियत की इस घिनौनी गाथा की सत्यता भारत में बांग्लादेशी शरणार्थियों

के आने से स्पष्ट हो गई। शुरुआती खबरें उन विदेशी पत्रकारों के माध्यम से आ रही थीं, जो 25 मार्च की रात में ढाका में रुक गए थे। सिडनी एच शानबर्ग उन 35 पत्रकारों में थे जिन्हें 27 मार्च को ढाका से बाहर भेज दिया गया था। उन्होंने मुंबई पहुंचकर अपनी रिपोर्ट प्रेषित की, जो 28 मार्च 1971 के न्यूयॉर्क टाइम्स में छपी। उन्होंने इस रिपोर्ट में बताया था कि किस तरह गाड़ियों में सवार पाकिस्तानी सैनिक शहर की गलियों में पेट्रोलिंग कर रहे थे और जगह–जगह उतर कर अंधाधुंध गोलियां बरसा रहे थे, घरों और बाजारों को आग के हवाले कर रहे थे। उन्होंने लिखा था कि कैसे तोपें, मशीन गन और अन्य हथियार मासूम जनता के कत्ले–आम में इस्तेमाल किए गए। उन्होंने लिखा कि किस तरह भुट्टो 26 मार्च की सुबह 7:30 बजे तक अपने कमरे में शांतिपूर्वक सोते रहे। बाद में उन्हें पाकिस्तानी सेना की सुरक्षा में इंटर कॉन्टिनेन्टल होटल से ले जाया गया। वहां उन्होंने पाकिस्तानी सेना की इस कार्रवाई के बारे में पूछे जाने पर कुछ भी बताने से इंकार कर दिया। 29 मार्च को यूनाइटेड प्रेस इंटरनेशनल ने अपने पत्रकार रॉबर्ट केलर की डायरी पर आधारित एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसका शीर्षक था '26 घंटे के ढाका घटनाक्रम का वृत्तान्त'। इसमें रॉबर्ट केलर ने विस्तार से बताया कि किस तरह पाकिस्तानी सैनिक पूर्वी पाकिस्तान में घरों और दुकानों में घुस रहे थे और उन्हें जलाकर तहस–नहस कर रहे थे। इसके अलावा इंग्लिश डेली 'द पीपुल' को जलाए जाने और होटल से भुट्टो के रवाना होने सहित अन्य घटनाओं का भी इसमें जिक्र था, जिसे उन्होंने होटल से देखा या सुना था। (6)

29 मार्च को दो ऑस्ट्रेलियाई अखबारों 'सिडनी मॉर्निंग हेराल्ड' और 'एज कैनबरा' ने बांग्लादेश के इस नरसंहार के बारे में संपादकीय लिखे। सिडनी मॉर्निंग हेराल्ड ने मासूम लोगों के कत्ले–आम के बारे में जिक्र किया। "राष्ट्रपति याह्या खान ने आयरलैंड में ब्रिटेन के और अल्जीरिया में फ्रांस के नरसंहार इतिहास से कुछ सबक नहीं लिया बल्कि अंधा बना रहा। अब वह सेना की ताकत के जरिये एकजुटता दिखाने की कोशिश कर रहा है। वह साढ़े 7 करोड़ बंगालियों पर अल्पसंख्या वाले पश्चिमी भाग के लोगों द्वारा नियंत्रित कृत्रिम पाकिस्तान थोपने की कोशिश करता रहा है। जबकि यह साढ़े 7 करोड़ बंगाली लोकतान्त्रिक चुनाव में जमकर मतदान के साथ पहले ही शेख मुजीबुर्रहमन के प्रति अपनी निष्ठा प्रदर्शित कर चुके हैं और एक स्वायत्त पूर्वी पाकिस्तान की मांग करते रहे हैं। राष्ट्रपति के साथ बातचीत बेनतीजा रहने के बाद ही उन्होंने आजादी का आह्वान किया है। बातचीत टूटने के जिम्मेदार राष्ट्रपति हैं। राष्ट्रपति के पास शक्तियां हैं। वह तोपों, बंदूकों और लड़ाकू विमानों की मदद से पूर्वी पाकिस्तान के शहरों पर अस्थाई विजय तो प्राप्त कर सकते हैं लेकिन क्या पश्चिमी पाकिस्तान से 1000 मील दूर बंगाली राष्ट्रवाद से उपजे छापामार युद्ध को वह दबा पाने की उम्मीद रखते हैं।" एज कैनबरा ने संपादकीय में लिखा कि "नाराज बहुसंख्यक जनता को सेना के आतंक से दबाकर कोई भी देश एकजुट नहीं रह सकता।"

नेपाल में काठमांडू के 'न्यू हेराल्ड' ने 30 मार्च को अपने संपादकीय में लिखा "यह निश्चित हो चुका है कि पश्चिमी पाकिस्तान की बर्बर सैन्य शक्ति द्वारा पूर्वी पाकिस्तान के लोगों पर नृशंस अत्याचार की कहानी दुनिया के सामने है और इससे समूचे विश्व की हमदर्दी पूर्वी पाकिस्तान के लोगों के साथ हो गई है।.... जितनी जल्दी पश्चिमी पाकिस्तान यह समझ ले कि पूर्वी पाकिस्तान में थोपी गई जोर–जबरदस्ती की एकता ज्यादा दिन टिकने वाली नहीं है, उतना ही उसके लिए बेहतर होगा।"

फोटो–5

लंदन के 'द गार्जियन' में 31 मार्च को प्रकाशित सम्पादकीय बेहद सटीक और निर्ममता की असली तस्वीर दिखाने वाला था। इसमें लिखा गया, "पाकिस्तान के जघन्य अपराध के बारे में हमें अब पता चला है। राष्ट्रपति याह्या खान ने इन तथ्यों को छुपाने के लिए लिखा था। उनके समाचार माध्यमों से अलग तरह का ही प्रोपेगंडा फैलाया जा रहा था। प्रत्येक विदेशी पत्रकार को बाहर भेजा जा रहा था। कुछ स्वतंत्र पत्रकार पाकिस्तानियों की नजर से छुप सके और उन्हीं की आंखों देखी भयावह और डरावनी सच्चाई अब दुनिया के सामने आ रही है। निहत्थी भीड़ पर मशीनगनों से अंधाधुंध गोलीबारी की गई, तोपों से गोले बरसा कर छात्रों और छात्रावासों को रौंद डाला गया, कस्बों में झोपड़ों पर बम बरसाए गए और उन्हें आग के हवाले कर दिया गया, नागरिकों की बिस्तर पर लाशें मिलीं जिनकी सोते समय ही गोली मारकर हत्या कर दी गई। जिन्हें गिरफ्तार किया गया, उनका क्या हुआ होगा, अथवा वहां कितना विरोध हो रहा है, यह हम नहीं जानते लेकिन यह तो निश्चित है कि बेगुनाह लोगों की हत्या कर बलपूर्वक एकता का वातावरण तैयार नहीं कराया जा सकता। भुट्टो, जो अपने आप को राष्ट्रीय नेता कहता है, उसने इस भयंकर नरसंहार पर अल्लाह का शुक्रिया अदा किया। पश्चिमी अफ्रीका में बियाफ्रा में जो हुआ, उसकी तुलना में पूर्वी पाकिस्तान में क्या सही है और क्या गलत है इसको आसानी से तय किया जा सकता है। अमेरिका जैसे देश जो पाकिस्तानी सेना को हथियार उपलब्ध करवाते हैं, उन्हें यह अनुभव करना चाहिए कि पाकिस्ता नी सेना उनके दिए हथियार कहां और कैसे इस्तेमाल कर रही है। चीन और सीलोन (श्रीलंका) को भी यह समझना होगा कि इन देशों से होकर रसद और सेना पश्चिम से पूर्वी पाकिस्तान भेजे जाने के क्या उद्देश्य थे और उनका क्या उपयोग हुआ। जहां तक ब्रिटेन जैसे देशों की बात है तो ब्रिटेन का क्षेत्र में अभी भी प्रभाव है। उसे अपने प्रभाव का तुरंत बलपूर्वक इस्तेमाल करना चाहिए। ढाका में जो कुछ हुआ है, वह मानव जाति की अपेक्षाओं और मानवता के विरुद्ध भयंकर अपराध है। अब किसी को भी इस मामले में चुप नहीं रहना चाहिए।" 'द न्यूयॉर्क टाइम्स' ने 31 मार्च के अपने संपादकीय में पाकिस्तानी सेना द्वारा "अल्लाह और संयुक्त पाकिस्तान के नाम पर" मासूम बंगालियों की निर्मम हत्या की कड़ी आलोचना की। संपादकीय में यह भी सुझाव दिया गया कि अमेरिकी सरकार को अब पाकिस्तान सेना को सैन्य सहायता बंद कर देनी चाहिए। सम्पादकीय में लिखा गया कि "पाकिस्तान की सेना को शस्त्र मुहैया कराने और उन्हें प्रशिक्षित करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका ने बड़ी भूमिका अदा की थी जिसका पाकिस्तान सेना ने पूर्वी पाकिस्तान में नरसंहार में पूरा लाभ उठाया। अतरू अब अमेरिका को पाकिस्तान की याह्या खान सरकार को रक्षा सहायता रोक देनी चाहिए। आर्थिक मदद सिर्फ तभी जारी रखनी चाहिए जब उसका बड़ा हिस्सा तबाह हुए पूर्वी पाकिस्तान की बर्बादी को ठीक करने में इस्तेमाल हेतु सुनिश्चित किया जाए।" (7)

Photo C
ger

लंदन के 'न्यू स्टेट्समैन' में 2 अप्रैल 1971 को मर्विन जोंस की एक रिपोर्ट छपी जिसका शीर्षक था 'बंगाल का विलाप'। "खबरों के प्रकाशन पर सेंसरशिप के बावजूद ढाका से लगातार ऐसी खबरें आ रही हैं जो पाठकों के दिलो–दिमाग को झकझोर सकती हैं। राष्ट्रपति याह्या खान के आदेश पर पूर्वी पाकिस्तान के लोगों पर हमले के लिए पाकिस्तानी सेना तोपों के साथ पूरी तरह तैयार थी। इस नरसंहार के पीछे बेहद तुच्छ तर्क दिया गया कि समूचे पूर्वी पाकिस्तान की जनता पाकिस्तानी सेना की दुश्मन है जिसने अपनी मर्जी से स्वायत्त शासन की उम्मीद में प्रयास किए।" इसके बाद मर्विन ने अपनी इस रिपोर्ट में बांग्लादेश में फैली भुखमरी का भी जिक्र किया। उन्होंने लिखा कि "पाकिस्तान के गठन के बाद से ही पश्चिमी पकिस्तान पूर्वी पाकिस्तान के लोगों का निरंतर शोषण करता रहा, शासक चाहे जो भी रहा हो।" उन्होंने अपनी रिपोर्ट के आखिर में लिखा कि "याह्या खान का अपराध युद्ध को उकसाने वाला है, अगर अभी नहीं तो निश्चित तौर पर जल्द ही युद्ध छिड़ सकता है।" उन्होंने लिखा कि "नरसंहार के बारे में अब पूरी दुनिया को पता चलने लगा है और इस नरसंहार का और अधिक डरावना रूप दुनिया के सामने आने लगा है। अब जो सूचनाएं ढाका के अलावा पूर्वी पाकिस्तान के अन्य कस्बों से आ रही हैं, उससे स्पष्ट है कि केंद्र सरकार से आजादी की उम्मीद में पूर्वी पाकिस्तान में युद्ध की स्थिति और उसके परिणाम कल्पना से बहुत अधिक वीभत्स और भयावह थे। उपलब्ध प्रमाण से यह बात स्पष्ट थी कि इस नरसंहार का मकसद समूची आवामी लीग का सफाया करना था ताकि पूर्वी पाकिस्तान में लोगों को विरोध–आंदोलन का कोई प्रभावी नेतृत्व न मिल सके।"

इस हत्याकांड के विरोध में न सिर्फ भारतीय मीडिया और पश्चिमी मीडिया लिख रहा था, बल्कि नवगठित राष्ट्र सिंगापुर में भी 6 अप्रैल 1971 को एक संपादकीय प्रकाशित किया गया, जिसका शीर्षक था 'पूर्वी पकिस्तान में जारी प्रलय पर विराम लगना चाहिए।' संपादकीय में बताया गया कि पूर्वी पाकिस्तान से सुरक्षित निकाले गए विदेशी नागरिकों ने जो आंखों देखी हकीकत बयां की, वह राष्ट्रपति याह्या खान की सेना द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों के अंदाजे से कहीं ज्यादा भयावह थी। उसमें लिखा गया कि "जो कुछ भी हो रहा था वह एक नरसंहार जैसा ही था। पूर्वी पाकिस्तान में जारी यह नरसंहार निश्चित रूप से रुकना चाहिए। इसके लिए भारत, रूस और ब्रिटेन ने रावलपिंडी से अपील की। इस प्रयास में और भी देशों को सामने आना चाहिए और मानवता व मानवाधिकारों के खिलाफ जारी इस क्रूर अभियान का विरोध करना चाहिए। आंतरिक संप्रभुता को बरकरार रखने के नाम पर जो कुछ भी हो रहा है, वह नहीं होना चाहिए।" (8)

6 अप्रैल, 1971 को ब्रिटेन के मालवाहक जहाज क्लैन मैकनायर से 17 देशों के लगभग 119 नागरिक चटगांव से कोलकाता लाए गए। इसमें सबसे अधिक 37 लोग अमेरिका के थे जबकि 33 ब्रिटिश नागरिक थे। ब्रिटेन का जहाज बांग्लादेशी बलों और पाकिस्तानी सेना के बीच जारी युद्ध के चलते चटगांव में सामान उतार नहीं सका। उसे 5 अप्रैल को ही वहां से वापस लौटना पड़ा। यात्री जैसे ही जहाज से नीचे उतरे उनकी मुलाकात राजनयिक अधिकारियों और भारतीय व विदेशी पत्रकारों से हुई। सिडनी एच सेनबर्ग ने न्यूयॉर्क टाइम्स में 7 अप्रैल को प्रकाशित अपनी रिपोर्ट में लिखा कि "एक ने कहा कि यह नरसंहार था" तो दूसरे ने कहा "यह सेना द्वारा नागरिकों के खिलाफ छेड़ा गया युद्ध था।" बांग्लादेश से लौटे इन लोगों ने बताया

कि किस तरह से पाकिस्तान की सेना ने मासूम नागरिकों का कत्ले–आम किया, उनके घरों और झोपड़ों को जला दिया, लोगों को प्रताड़ित किया और लूटपाट की। ऐसा लग रहा था जैसे पाकिस्तानी सेना सब कुछ तबाह करने और लोगों की हत्या करने में आनंद उठा रही थी।.... एक यात्री ने बताया कि 4 दिन पहले की बात है नदी में लगभग 400 शवों को उसने बहते हुए देखा है। न्यूयॉर्क के एक अमेरिकी इंजीनियर एडवर्ड जे मैकमैनस ने तंज कसा कि सेना का बर्ताव बड़ा ही विनम्र था।.....उसने कहा कि "पाकिस्तानी सैनिक मेरी पूरी व्हिस्की पी गए लेकिन उन्होंने मेरा गिलास मुझे वापस लौटा दिया.... बेहद ईमानदार फौजी।" दुनिया के अलग–अलग देशों में विभिन्न अखबारों में इसी तरह के संपादकीय और खबरें छपती रहीं। स्टॉकहोम के एक्सप्रेसेन ने 12 अप्रैल को श्बंगाल में सामूहिक हत्याश शीर्षक से रिपोर्ट छापी। न्यू स्टेट्समैन की 16 अप्रैल की खबर 'बांग्लादेश का रक्त' शीर्षक से छपी। 17 अप्रैल को इवनिंग स्टार के संपादकीय का शीर्षक था 'पूर्वी पाकिस्तान में मौतें'। द बाल्टीमोर सन ने 14 मई को प्रकाशित अपने संपादकीय में लिखा, "श्री रोजनब्लम के प्राथमिक आंकलन के मुताबिक पाकिस्तानी सेना द्वारा लगभग 5 लाख से भी अधिक लोगों को मारे जाने की आशंका है। अकाल के कारण और राहत अभियान रोक देने के कारण लाखों लोग भुखमरी की कगार पर हैं। यह तस्वीर और भी भयावह हो सकती है।" (9)

आर्चर केंट ब्लड 1970–71 में ढाका में अमेरिकी काउंसिल जनरल थे। उन्होंने चुनाव और चुनाव के बाद 25–26 मार्च 1971 को शुरू हुए सैन्य अभियान को अपनी आंखों के सामने होते हुए देखा। वे बांग्लादेश में इस नरसंहार के बारे में लगातार अमेरिका के गृह विभाग को सूचित कर रहे थे। 27 मार्च 1971 को अपने पहले टेलीग्राम में उन्होंने लिखा, "1–यहां हम, पाकिस्तानी सेना द्वारा फैलाए जा रहे आतंक के मूक दर्शक बने हुए हैं। मार्शल लॉ अधिकारियों के पास आवामी लीग के नेताओं और उनके समर्थकों की पूरी सूची है, जिन्हें वे चुन–चुन कर घरों से निकालकर मार रहे हैं। 2–आवामी लीग नेताओं के अलावा छात्र नेताओं और विश्वविद्यालय में पढ़ाने वाले अध्यापकों को भी निशाना बनाया जा रहा है। इस श्रेणी में हमारे पास जो खबरें आ रही हैं उनके अनुसार दर्शनशास्त्र विभाग के प्रमुख फजल–उर–रहमान और एक हिंदू अध्यापक प्रोफेसर गुहा ठाकुर्ता या गोविंदा डे (मुझे इसे परखना होगा), इतिहास विभाग के प्रमुख एम. आबेदिन मारे जा चुके हैं। राजनीति शास्त्र विभाग के प्रमुख रज्जाक के भी मारे जाने की आशंका है। गैर–बंगाली मुसलमान, पाकिस्तानी सेना के समर्थन से बंगाली मुसलमानों और हिंदुओं के घरों पर हमले कर रहे हैं और उन्हें मार रहे हैं।" (10)

6 अप्रैल को आर्चर ब्लड ने अमेरिकी गृह विभाग को एक और टेलीग्राम भेजा, जिसमें उन्होंने कुछ और कड़े शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने लिखा कि "हमारी सरकार लोकतंत्र को दबाए जाने की मुहिम को नहीं रोक सकी। हमारी सरकार अत्याचार की आलोचना करने में भी असफल रही। हमारी सरकार नागरिकों के हितों की रक्षा करने में असफल रही और पश्चिमी पाकिस्तान के नियंत्रण वाली सरकार की नीतियों के समर्थन में लाचारी पूर्वक झुकती रही और उसका बचाव करती रही। हमारी सरकार अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पाकिस्तान के असली चेहरे को उजागर होने से रोकती रही। हमारी सरकार इस नरसंहार की आलोचना करने में भी नैतिक दिवालिएपन का प्रदर्शन करती रही। हम सरकारी तंत्र का हिस्सा होने के बावजूद वर्तमान

नीतियों का विरोध करते हैं। लेकिन हमने तय किया है कि इस मामले में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। नैतिक आधार पर भी नहीं क्योंकि यह विवाद जो बाद में नरसंहार में बदल गया, यह एक संप्रभु देश का पूरी तरह से आंतरिक मसला है। अमेरिकी नागरिकों ने इस पर असंतोष जाहिर किया है। लेकिन सरकारी अधिकारी होने के बावजूद हमने वर्तमान नीतियों से असहमति जताई है। मैं उत्साहपूर्वक यह अपेक्षा कर रहा हूं कि हमारे सही और दूरगामी हित जल्द स्पष्ट किए जाएंगे और हमारी नीतियों में बदलाव होगा।" (11)

आर्चर ब्लड की यह रिपोर्ट पश्चिमी पाकिस्तान में अमेरिकी राजदूत एस. फारलैंड की रिपोर्ट से बिल्कुल अलग थी। आर्चर ब्लड को सच्चाई का साथ देने की कीमत चुकानी पड़ी। अमेरिकी गृह विभाग को पूर्वी पकिस्तान की वास्तविक हालात से रू–ब–रू कराने वाले आर्चर को उनके पद से हटा दिया गया और बांग्लादेशियों के साथ सहानुभूति रखने के कारण उनका राजनयिक करियर भी चौपट कर दिया गया।

अमेरिकी प्रतिनिधि सभा के सदस्य जेम्स डी. मैककेविट ने 11 मई 1971 को अपने भाषण में पूर्वी पाकिस्तान के भयावह घटनाक्रम का जिक्र किया जिसकी जानकारी उन्हें बांग्लादेश से बचाए गए एक अमेरिकी नागरिक ने दी थी। अपने भाषण के अंत में उन्होंने कहा कि "रूस ने कम से कम इस घटना का संज्ञान तो लिया जबकि अमेरिका ने तो यह करना भी जरूरी नहीं समझा। शायद हमारी सरकार वियतनाम में किए गए अत्याचारों से शर्मिंदा होकर मौन रहे।" पाकिस्तान ऑब्जर्वर के ए हुसैन ने टाइम्स ऑफ लंदन के पीटर हेजलहर्स्ट को दिए एक साक्षात्कार में अपनी आंखों–देखा एक वृतांत सुनाया। उन्होंने बताया कि "6 मई से 10 मई के बीच बूढ़ी गंगा में मैंने कई लाशें बहते हुए देखी हैं। मृतकों के हाथ बंधे हुए थे। कुछ 6–7 शवों को तो रस्सी से आपस में बांधा गया था। उनके शरीर पर चोट के कोई निशान नहीं थे। आसपास के लोगों ने मुझे बताया कि सभी पीड़ित ढाका के बाहर स्थित एक माचिस की फैक्ट्री में काम करने वाले मजदूर थे। जिनकी हत्या गैर–बंगालियों ने की थी। बंगाली पत्र पूरबदेश के मैनेजर हसन उल्लाह चौधरी को ढाका से 9 मील दूर मीरपुर में उनके घर पर ही गैर–बंगालियों ने मार डाला। मैं 5 मई को ढाका की नवाबपुर रोड से गुजर रहा था, वहां मैंने देखा, बिहारी मुस्लिमों के एक समूह के पास सेना के तीन ट्रक रुके, मुस्लिमों ने पास की एक दुकान पर एक बंगाली की तरफ इशारा किया। एक जवान ने अपनी राइफल उठाई और बिना कुछ पूछे ही उसे गोली मार दी।" (12)

एक अन्य अमेरिकी सीनेटर गोर्डन एलॉट ने भी सीनेट में इसी तरह का एक प्त्र पढ़कर सुनाया, जो उन्हें फोर्ट कॉलिन्स से मिला था। सीनेटर एलॉट ने बांग्लादेश से बचाए गए अमेरिकी नागरिकों से प्राप्त सूचना के आधार पर ब्यौरा सीनेट में पेश किया। इसमें सामूहिक हत्याकांड, लूट, बलात्कार और आगजनी के बारे में विस्तृत जानकारी थी। उन्होंने बताया कि "पाकिस्तानी सेना में ऐसे कई बंगाली अधिकारी थे, जिन्हें उनकी निष्ठा पर संदेह के कारण मार दिया गया। बांग्लादेश में अमेरिकी मिशनरियों ने जानकारी दी कि किस तरह से बेगुनाह और मासूम नागरिकों को बिना किसी गलती के मौत के घाट उतार दिया गया। उन्होंने बताया कि पाकिस्तानी सेना ने बांग्लादेश में मौजूद विदेशी नागरिकों को भी नहीं बख्शा। 30 मार्च को पाकिस्तान की सेना ने तीन ब्रिटिश नागरिकों की लगभग हत्या कर दी थी। ये लोग पुराने

ढाका में घूम रहे थे और तबाही की तस्वीरें अपने कैमरे में कैद कर रहे थे जहां से सेना ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। उनके साथ दो अमेरिकी नागरिक भी थे लेकिन उन्हें पूछताछ के बाद छोड़ दिया गया। यह संयोग ही था कि इन्हीं अमेरिकी नागरिकों की सूचना के आधार पर ब्रिटिश उच्चायोग ने अथक प्रयासों से इन ब्रिटिश नागरिकों को बचा लिया, नहीं तो उनकी मौत तय थी। एक छावनी में सेना इन तीनों ब्रिटिश नागरिकों को 3 घंटे की पूछताछ के बाद गोली मारने वाली थी, इतने में वहां पर ब्रिटेन का प्रतिनिधि पहुंच गया, जिसने इनकी जान बचा ली। एक अमेरिकी डॉक्टर के घर पर दो सैनिक पहुंचे, जब उसकी पत्नी घर पर अकेली थी। बंदूक की नोक पर उन्होंने घर में लूटपाट की और हाथ में लिए ग्रेनेड से उसको डराते और धमकाते वहां से चले गए। गुलशन इलाके में कार से जा रहे एक अमेरिकी और उसकी पत्नी को दो सिपाहियों ने कार रोकने का हुक्म दिया। सिपाहियों ने उनकी घड़ी, पैसा, अंगूठी और जो कुछ भी उनके पास था, सब लूट लिया।" (13)

***

भारत में बांग्लादेशी शरणार्थियों के आने की शुरुआत अप्रैल 1971 के पहले सप्ताह से हुई। शुरुआत में भारत की सीमा से सटे इलाकों से शरणार्थी आए। इनमें मुख्यतः आवामी लीग के समर्थकों और हिंदुओं की संख्या अधिक थी। अप्रैल के दूसरे सप्ताह तक एक लाख 20 हजार शरणार्थी सीमा पार कर भारत आ चुके थे। 24 अप्रैल को यह संख्या 6 लाख 50 हजार तक पहुंच गई। बैंकॉक के समाचार पत्र 'बैंकॉक वर्ल्ड' ने अपने संपादकीय में लिखा कि "पूर्वी पाकिस्तान से 5 लाख से अधिक शरणार्थी पड़ोसी देश भारत में जा चुके हैं। इस समस्या पर पाकिस्तान को सोचना चाहिए और इसमें कोई संदेह नहीं कि जल्द ही इस समस्या के हल के लिए अंतर्राष्ट्रीय मदद की आवश्यकता होगी। भारत की निश्चित तौर पर इसमें सहानुभूति होगी। लेकिन लगातार बढ़ती जा रही शरणार्थियों की संख्या को संभालने के लिए उसे बड़ी कीमत भी चुकानी पड़ सकती है। किसी एक देश के लिए अकेले इतने अधिक शरणार्थियों को संभाल पाना मुश्किल होगा।" मई के पहले सप्ताह तक भारत में पलायन कर रहे बांग्लादेशियों की संख्या बढ़कर साढ़े आठ लाख तक पहुंच गई और 15 मई तक इसमें तेजी से बढ़ोत्तरी हुई और यह लगभग 23 लाख के आसपास पहुंच गई। पूर्वी पाकिस्तान में नरसंहार और भारत में आने वाले शरणार्थियों की बढ़ती संख्या विश्व भर की मीडिया के लिए बड़ा विषय बन गया। विश्व के सभी प्रमुख समाचार पत्र बांग्लादेश सामूहिक हत्याकांड पर लगातार संपादकीय लिख रहे थे और खबरें प्रकाशित कर रहे थे। लंदन के द गार्जियन ने 7 मई को, ओटावा सिटीजन ने 10 मई को, घाना के पालावर ने 20 मई को, बैंकॉक पोस्ट ने 24 मई को, एज कैनबरा और काठमांडू के न्यू हेराल्ड ने 26 मई 1971 को अपने–अपने संपादकीय में पाकिस्तानी सेना की इस क्रूर कार्रवाई की जमकर निंदा की और शरणार्थियों की मदद करने के लिए भारत की सराहना की। साथ ही समूचे विश्व से आग्रह किया गया कि पूर्वी पाकिस्तान में जारी इस मार–काट को रोकने के लिए वे पाकिस्तान पर दबाव ड़ालें।

दुनिया भर में विरोध होने के बाद मुस्लिम देशों, अमेरिका और चीन को छोड़कर अन्य सभी राष्ट्रों ने पाकिस्तान सरकार से इस समस्या के राजनीतिक समाधान के लिए आग्रह किया। पाकिस्तान के रवैये में कोई बदलाव न आता देख विश्व भर के प्रमुख नेता उसकी आलोचना

और बांग्लादेश से भारत में आए शरणार्थियों की मदद करने के लिए भारत की सराहना करने लगे। सोवियत संघ के राष्ट्रपति निकोलाइ पोडगोर्नी, चिली के राष्ट्रपति सल्वाडोर आलेण्डे और फिलीपींस के फर्डीनांड मार्कोस इन नेताओं में शामिल थे। इसके अलावा ब्रिटेन के प्रधानमंत्री एडवर्ड हीथ, न्यूजीलैंड के प्रधानमंत्री कीथ हाल्योर्के सोवियत संघ के कोशीजिन और पश्चिमी जर्मनी के चांसलर उन विश्व नेताओं में थे जिन्होंने मासूम लोगों के नरसंहार को तुरंत रोकने के लिए कहा। कनाडा, ब्रिटेन, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड के विदेश मंत्रियों ने भी पाकिस्तान से इस मार–काट को रोकने की अपील की।

अप्रैल 1971 में पाकिस्तानी सेना ने पश्चिमी पाकिस्तान के आठ वरिष्ठ संवाददाताओं के एक दल को पूर्वी पाकिस्तान का दौरा कराया जिसका मकसद यह दिखाना था कि पूर्वी पाकिस्तान में सब कुछ नियंत्रण में है। इनमें से एक पत्रकार थे द मॉर्निंग न्यूज, कराची के एंथनी मास्करेन्हस। बांग्लादेशी नागरिकों पर पाकिस्तानी सेना के नरसंहार की एक रिपोर्ट 13 जून 1971 को संडे टाइम्स में प्रकाशित हुई। एंथनी मास्करेन्हस का जन्म भारत के कर्नाटक राज्य में एक रोमन कैथोलिक परिवार में हुआ था और उनकी पढ़ाई कराची में हुई थी। अपने बांग्लादेश दौरे के दौरान उन्होंने जो भी देखा और सुना उसने उनकी अंतरात्मा को झकझोर दिया। उन्होंने काफी लोगों से बात की, जिसमें नरसंहार करने वाले सैन्य अधिकारी भी थे। उनको छोड़कर अन्य सभी पत्रकारों ने सेना के अधिकारियों के निर्देशानुसार ही खबरें प्रकाशित की। मॉर्निंग न्यूज में एंथनी ने अपनी खबर प्रकाशित नहीं की। इसके बजाए एंथनी अपनी बहन की बीमारी का बहाना बनाकर लंदन गए जहां उन्होंने संडे टाइम्स के हेरल्ड इवांस से संपर्क किया और उन्हें वो सब कुछ बताया जो बांग्लादेश में उन्होंने देखा था। प्रकाशन के लिए कुछ तथ्य और विवरण भी उन्हें सौंप दिये। संडे टाइम्स के संपादक मास्करेन्हस के इस लेख को प्रकाशित करने के लिए तैयार भी हो गए, लेकिन समस्या यह थी कि पत्रकार एंथनी की पत्नी और उनके पांच बच्चे अभी भी पाकिस्तान में थे।

अगर यह रिपोर्ट प्रकाशित कर दी जाती तो पाकिस्तानी सेना की बर्बरता का सामना उनके परिवार को करना पड़ता। इसलिए पहले उन्हें पाकिस्तान से बाहर लाने की योजना बनाई गई। लंदन से निकलने से पहले एंथनी ने अपनी पत्नी को एक कोड वर्ड दिया ताकि शॉर्ट नोटिस पर वे पाकिस्तान से बाहर निकल सकें। पत्नी को लिखे टेलीग्राम में उन्होंने कहा कि "ऐन का ऑपरेशन सफल रहा।" यह पाकिस्तान से बाहर निकलने के लिए कोड था। किसी तरह का संदेह होने से बचने के लिए पत्रकार एंथनी ने कराची लौटने के बाद अपनी पत्नी और बच्चों को लंदन भेज दिया। नियम के अनुसार कोई भी पाकिस्तानी एक साल में एक से अधिक बार विदेशी दौरा नहीं कर सकता था। इसलिए वह पाकिस्तान से पहले अफगानिस्तान गए और वहां से लंदन के लिए रवाना हुए। उसके बाद जब पूरा परिवार एक साथ हो गया तब उनका लेख 'नरसंहार' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। पाकिस्तान की बर्बरता पर मास्करेन्हस का यह लेख बांग्लादेश मुक्ति संग्राम के इतिहास में बाजी पलटने वाला साबित हुआ। किसी पाकिस्तानी पत्रकार द्वारा पाकिस्तानी सेना की अपने नागरिकों पर किए गए अत्याचारों की कहानी सुनकर दुनिया स्तब्ध रह गई। पूरी दुनिया में इसके विरोध में लगातार आवाजें उठने लगीं। मास्करेन्हस की यह खबर लंदन के संडे टाइम्स में 13 जून 1971 को प्रकाशित हुई। उनसे चश्मदीदों ने जो कहा उसका सार यहां छोटे–छोटे पैराग्राफ में दिया गया है।

"अब्दुल बारी दुर्भाग्यशाली था..... 24 वर्षीय दुबला–पतला युवक सैनिकों से घिरा हुआ था। वह कांप रहा था क्योंकि कुछ ही क्षणों में उसे गोली मार दी जानी थी। मुझे डिवीजन 9 के मेजर राठौर ने बताया कि 'उस युवक ने डरकर भागने की कोशिश की उसके आधार पर हम उसे गोली मारने वाले थे। लेकिन अब हम उसे आपके संतोष के लिए चेक कर रहे हैं। आप यहां हैं और परेशान दिख रहे हैं।' जब मैंने पूछा कि 'उसे क्यों मारना चाहते हो?' तो जवाब था 'क्योंकि वह एक हिन्दू हो सकता है, विद्रोही हो सकता है, छात्र हो सकता है या आवामी लीग का नेता भी हो सकता है। उन्हें पता है कि हम उनकी जांच कर रहे हैं, इसलिए वे भाग रहे हैं।' मैंने जोर दिया कि 'उनकी हत्या क्यों? हिंदुओं पर निशाना क्यों?' राठौर ने आक्रोश में कहा, 'मैं आपको याद दिलाऊं कि कैसे उन्होंने पाकिस्तान को नष्ट करने के प्रयास किए। अब इसी लड़ाई में हमारे पास मौका है उनका सफाया करने का। यह बात बिल्कुल सच है कि हम केवल हिंदुओं की ही हत्याएं कर रहे हैं। हम सिपाही हैं, बांग्ला विद्रोहियों की तरह कायर नहीं। वे हमारी महिलाओं और बच्चों की हत्या करते हैं।' (14)

बांग्लादेश की कुल आबादी साढ़े सात करोड़ थी, जिसमें हिन्दू लगभग बीस प्रतिशत थे। हजारों बंगाली मुसलमानों के साथ अधिकांश हिन्दू भी पाकिस्तानी सेना की इस बर्बरता का शिकार हुए। मारे गए मुसलमानों में विश्वविद्यालयों और कॉलेजों के छात्र, शिक्षक, आवामी लीग के नेता तथा कार्यकर्ता और विद्रोह करने वाले सैनिक व अर्धसैनिक बलों के जवान शामिल थे। पाकिस्तानी सेना के अधिकारियों ने मास्करेन्हास को निजी तौर पर बताया कि लगभग 2,50,000 लोगों को मारा जा चुका है। इनमें बंगाली और गैर–बंगाली दोनों शामिल थे, जिन्हें स्वतंत्रता की घोषणा के बाद बांग्लादेशियों ने मार दिया था। सेना जिसे भी देखती थी मुस्लिम होने की पुष्टि करने के लिए कपड़े उतरवाकर निजी अंगों पर खतना की जांच करती थी। हिंदुओं को तुरंत गोली मार दी जाती और जो भागने की कोशिश करता उसे बिना कुछ पूछे ही मार दिया जाता था। मास्करेन्हास छह दिनों के लिए बांग्लादेश में पाकिस्तानी सेना के साथ थे। उन्होंने गांव–गांव, घर–घर में हिंदुओं को ढूंढ कर मारे जाने की घटनाएं देखीं।

मासूम लोगों को ट्रकों में भरकर रात के अंधेरे में उनका कत्ले–आम किया जाता था। सेना ने गांवों से स्वतन्त्रता सेनानियों के सफाए के बाद कई जगहों पर "किल एंड बर्न मिशन" चलाए। "गांव के गांव तबाह कर दिए गए। सेना के अधिकारी भोजनालय में भोजन पर बात करते कि यह सब 'अखंडता को बनाए रखने और पाकिस्तान की विचारधारा के संरक्षण' के लिए किया गया। पाकिस्तान की सेना में पंजाबियों का प्रभुत्व था जो बंगालियों से नफरत करते थे। पाकिस्तानी सेना के अधिकारियों के पास इस कत्ले–आम के लिए एक और स्पष्टीकरण था। वे कहते थे कि "सेना के आने से पहले बांग्लादेश में गैर बंगालियों की हत्याओं का यह बदला है। वे कहते थे कि उन्होंने हमारे साथ जो बर्बरता दिखाई उतनी बर्बरता तो 1947 के विभाजन में सिखों ने भी पाकिस्तानी मुसलमानों के खिलाफ नहीं दिखाई थी।" पाकिस्तानी सेना के एक पंजाबी अधिकारी ने मास्करेन्हास से कहा हम उस अत्याचार को कैसे भूल जाते या माफ कर देते। टिक्का खान ने 18 अप्रैल को रेडियो से सम्बोधन में कहा, "पाकिस्तान के गठन में पूर्वी पाकिस्तान के मुस्लिमों ने अहम भूमिका अदा की। वे इसके अस्तित्व को बनाए रखने के लिए दृढ़ हैं। हालांकि बहुसंख्यक जनता को हिंसक और आक्रामक अल्पसंख्यकों की गुंडागर्दी का शिकार होना पड़ा जिसने बहुसंख्यकों के जीवन को संकट में डाला, सम्पत्तियों को नुकसान

फोटो–6

पहुंचाया, और जिसने आवामी लीग को यह विध्वंसक नीति अपनाने को बाध्य किया।" अधिकारी ने कहा कि "यह साफ था कि बांग्लादेश में उत्पन्न संकट हिंदुओं की देन था। हालांकि पाकिस्तानी सेना का रवैया स्पष्टवादी था।" मास्करेन्हास को सेना मुख्यालय के 9वें डिवीजन के कर्नल नईम ने बताया कि "हिंदुओं ने अपने पैसों के दम पर मुस्लिम जनता को कमजोर किया। वे पैसा, खाद्य सामग्री और अन्य उत्पाद सीमा पार भारत भेजते थे। यहां स्कूलों और कॉलेजों में आधे से अधिक शिक्षक हिन्दू थे लेकिन उनके बच्चे पढ़ने कोलकाता जाया करते थे। एक ऐसा समय आया जब पूर्वी पाकिस्तान में बंगाली संस्कृति या कहें हिन्दू संस्कृति का प्रभाव बढ़ गया और इसका नियंत्रण कोलकाता में बैठे मारवाड़ी व्यापारियों के हाथों में आ गया। उसने कहा ष्लोगों को उनकी जमीन वापस दिलाकर, उन्हें उनका विश्वास दिलाकर हमें इसे दुरुस्त करना था।" (15)

ऑपरेशन सर्चलाइट के पीछे पाकिस्तान के दो राजनैतिक सैन्य उद्देश्य थे। पहला था सेना की भाषा में 'सफाई अभियान'। 18 अप्रैल को टिक्का खान के रेडियो सम्बोधन में इसकी स्पष्ट झलक भी मिलती है। दूसरा, राजनेताओं का पक्ष था 'पुनर्वास प्रयास'। यह योजना बांग्लादेश को पश्चिमी पाकिस्तान के अधीन रखने के लिए एक प्रक्रिया थी। पाकिस्तानी नेताओं को इस बात का अंदाजा था कि बड़े पैमाने पर हिंदुओं के नरसंहार और बांग्लादेश से भारत पहुंच रहे शरणार्थियों की आप–बीती सुनने के बाद भारत में हिन्दू–मुस्लिम दंगे भड़क सकते हैं, खासकर पश्चिम बंगाल, असम, त्रिपुरा और बिहार जैसे पूर्वी राज्यों में। इसके चलते मुस्लिम शरण के लिए बांग्लादेश का रुख कर सकते हैं। उनकी तैयारी थी कि अगर मुस्लिम शरणार्थी आते हैं तो उन्हें बांग्लादेशी हिंदुओं की खाली पड़ी जमीन दे दी जाएगी। इस बात का भी अनुमान लगाया गया था कि बंगालियों और गैर–बंगालियों की संख्या में अंतर आ सकता है। बांग्लादेश में गैर–बंगाली पाकिस्तान के प्रति अधिक निष्ठावान थे। गैर–बंगालियों की संख्या में इजाफा करना पाकिस्तान के प्रति जनता की अधिक निष्ठा की गारंटी था। (16)

मास्करेन्हास से बात करते हुए 9वीं डिवीजन के ही एक अन्य स्टाफ अधिकारी मेजर बशीर ने कहा कि "यह युद्ध, शुद्ध और अशुद्ध के बीच है। यहां लोगों के मुस्लिम नाम हैं, वे अपने को भले ही मुस्लिम कहते हों लेकिन दिल से वे हिन्दू हैं। आपको विश्वास नहीं होगा कि कैंटोनमेंट के इस इलाके में मौजूद मस्जिद के मौलवी ने जुमे की नमाज के दौरान फतवा जारी कर कहा था कि जो पश्चिमी पाकिस्तानियों को मारेगा उसे जन्नत नसीब होगी। (पाकिस्तान या दुनिया के किसी अन्य देश में कट्टर मौलवी जब भी ऐसे फतवे जारी करते हैं तो उनका मकसद काफिरों की हत्या होता है) हमने उस मौलवी का खात्मा कर दिया है और अब बाकी का भी काम तमाम करना है। जो बचेंगे वही असली मुसलमान होंगे। हम उन्हें उर्दू सिखाएंगे।" मास्करेन्हास ने अनुभव किया कि पूर्वाग्रह से ग्रस्त पाकिस्तानी सेना के अधिकारी और जवान अपने घृणास्पद स्पष्टीकरण की कल्पना में डूबे हुए हैं। "नरसंहार बेहद ही

आकस्मिक ढंग से शुरू किया गया था। सजा भी अधिकारी अपनी मनमर्जी से देते थे। मार्शियल एडमिनिस्ट्रेटर मेजर आगा 19 अप्रैल को अपने दफ्तर में बैठा था। एक बिहारी पुलिस उप–निरीक्षक उसके दफ्तर में उन बंदियों की सूची लेकर आया जिन्हें सजा दी जानी थी। आगा ने सूची देखी और पेंसिल से चार नामों के आगे टिक कर दिया और बोला 'इन्हें शाम को मेरे दफ्तर में ले आओ, यहां उन्हें सजा दी जाएगी।' उसने फिर से सूची देखी और पांचवें नाम पर भी टिक कर दिया और बोला 'इस चोर को भी उन चारों के साथ ले आना।' मुझे बताया गया कि इसमें दो हिन्दू हैं, तीसरा छात्र है और चौथा आवामी लीग का नेता है। सूची में जिस चोर का जिक्र था उसका नाम था सेबेस्टियन। उस पर अपने हिन्दू दोस्त के घर से कुछ घरेलू सामान चोरी करने का आरोप था।"

"बाद में शाम को मैंने देखा उन लोगों के हाथ और पैर एक ढीली रस्सी से बाँध दिए गए। उन्हें सर्किट हाऊस के कम्पाउंड की तरफ ले जाया जा रहा था। कर्फ्यू हटने के कुछ ही देर बाद, तकरीबन 6 बजे, उनके शरीर पर पड़ रहे डंडों की आवाजें वहां खेल रहे पक्षियों को भी डरा रही थी।" बलूच रेजीमेंट के कैप्टन अज़मत की प्रसिद्धि के दो ही कारण थे। एक–मेजर जनरल शौकत रज़ा के साथ एडीसी के रूप में उसकी तैनाती और दूसरा उसके सहकर्मी द्वारा अज़मत की रैगिंग। पता चला कि ग्रुप में वही एक मात्र ऐसा अधिकारी है जिसने कोई 'हत्या' नहीं की है। मेजर बशीर उसका बहुत मजाक उड़ाता था। बशीर ने उससे एक रात को कहा कि "हम तुममें एक बहादुर मर्द देखना चाहते हैं। हम कल देखेंगे कि तुम उन्हें कैसे भगाते हो। यह बहुत आसान है।" बंगालियों को 'दंडात्मक कार्रवाई' का सामना करना होगा। इसका मतलब क्या था, यह जब हम हाजीगंज जा रहे थे तब समझ आया। हाजीगंज से कुछ ही मील दूर एक 15 फुट लंबे पुल को पिछली रात विद्रोहियों ने क्षतिग्रस्त कर दिया था, जो इलाके में अभी भी सक्रिय थे। मेजर राठौर ने कहा कि एक सैन्य दस्ता दंडात्मक कार्रवाई के लिए तुरंत भेज दिया है। क्षतिग्रस्त पुल के चौथाई मील दूर तक चारों ओर धुआँ उठ रहा था। गांव के पीछे कुछ जवान सूखे नारियल के पत्तों को जलाकर रोशनी कर रहे थे। गांव के प्रवेश पर ही नारियल के पेड़ों के बीच पड़े एक शव को हम देख सकते थे। हम जैसे ही आगे बढ़े, मेजर राठौर ने कहा 'इसे यही लोग लेकर आए हैं।' मैंने कहा विद्रोहियों की हरकतों के लिए इन निर्दोषों के साथ इस तरह की हिंसा बेहद भयानक है। वह चुप रहे, उन्होंने मुझे कोई जवाब नहीं दिया...

कुछ घंटों बाद जब हम चांदपुर से वापस लौटते समय दोबारा हाजीगंज से गुजर रहे थे, रास्ते में पहली बार मेरा सामना बेहद क्रूर 'किल एंड बर्न मिशन' से हुआ। हम मुड़े और हमने देखा कि एक मस्जिद के पास गाड़ियों का एक काफिला रुका हुआ था। वहां खड़े 7 ट्रकों में युद्ध की वेशभूषा में जवान भरे हुए थे। काफिले के आगे एक जीप खड़ी थी। सड़क के उस पार खड़े दो लोगों को एक व्यक्ति कुछ समझा रहा था, जो 100 से अधिक दुकानों में से एक का शटर उठाने की कोशिश कर रहे थे। मेजर राठौर ने टोयोटा को पास में ही पार्क किया। वहां खड़े तीन लोगों में सबसे ऊंचे कद का व्यक्ति चिल्ला पड़ा ष्तुम यहां क्या कर रहे हो.....?' फिर वह जोर से बोला 'मोटा, तुम यहां कैसे?' आवाज पहचानने के बाद राठौर मुस्कुराया और मुझसे बोला यह 'इफ्ती' है मेरा पुराना दोस्त। मेजर इफ्तिकार, 12वीं फ्रंटियर फोर्स राइफल्स का अधिकारी है। राठौरः 'मुझे लगा कोई लूटपाट चल रही है' इफ्तिकारः 'लूटपाट? नहीं, हम किल एंड बर्न मिशन पर हैं।' उसने हाथ से इशारा किया और कहा वह यहां की दुकानों को

नष्ट करने जा रहा है। राठौरः 'तुम्हारे हाथ कितने लगे?' इफ्तिकार पहले हिचकिचाया। राठौर ने फिर पूछा तो उसने कहा केवल 12। उसने कहा, 'शुक्र है अल्लाह का कि हम इन्हें दबोच सके, अगर पीछे से मैंने अपने जवानों को नहीं भेजा होता तो शायद इन्हें नहीं पकड़ पाते।' मेजर राठौर के बार–बार पूछने पर इफ्तिकार ने बताया कि कस्बे के नजदीक एक घर में छिपे इन हिंदुओं को काफी तलाशी के बाद ढूंढा जा सका। उन्हें मार दिया गया है। मेजर अब दूसरे मिशन पर था। फिलहाल दुकान का शटर तोड़ दिया गया। हमारी नजरें दुकानों पर थीं। दुकान के बोर्ड पर बंगाली के अलावा अंग्रेजी में 'अशोक मेडिकल एंड स्टोर्स' लिखा हुआ था। दुकान के मालिक का नाम 'ए एम बोस' लिखा हुआ था। बोस को भी हाजीगंज के अन्य लोगों की तरह ही बंद कर दिया गया था। इफ्तिकार ने इन दुकानों को आग के हवाले कर दिया और वहां से चलता बना। अगले दिन जब मेरी मुलाकात इफ्तिकार से हुई तो उसने कहा कि "मैंने केवल साठ घरों को ही आग लगाई। अगर बारिश न हुई होती तो मैं पूरे कस्बे को आग में नष्ट कर देता।" (17)

"मुदफरगंज से कुछ मील की दूरी पर एक गांव के पास हमने देखा कि एक आदमी मिट्टी की दीवार से चिपका खड़ा हुआ है। जवानों में से एक ने, जो शायद एक फौजी स्नाइपर था, उसे चेतावनी दी। जब वह पलटा तो हम स्तब्ध रह गए क्योंकि वह तो एक सुंदर हिंदू लड़की थी। लेकिन वह वहां बैठी रही, किसी को नहीं पता था कि वह किसका इंतजार कर रही थी। पूर्वी पाकिस्तान राइफल्स का एक जवान, जो लगभग दस सालों से बंगाल में था, वह बंगाली अच्छे से बोल सकता था, उससे कहा गया कि वह उसे गांव ले जाए। उसने जवाब में कुछ कहा, लेकिन वह अपनी जगह से हिली नहीं। जब हम दूर चले गए तब भी वह वहीं बैठी रही। मुझे बताया गया कि 'न तो उसका घर बचा था और न ही परिवार। .....' मेजर इफ्तिखार उन अधिकारियों में से एक था जिसे किल एंड बर्न मिशन की जिम्मेदारी सौंपी गई थी। सेना द्वारा हिंदुओं और 'उपद्रवियों' (विद्रोहियों के लिए आधिकारिक शब्द) को नष्ट करने और उन क्षेत्रों में सब कुछ जलाने की आजादी के साथ विद्रोहियों को खत्म करने का दायित्व दिया गया था। ... पंजाबी अधिकारी को अपनी नौकरी के बारे में काफी बातें करना पसंद था। जब मैं इफ्तिखार के साथ सर्किट हाउस जा रहा था, उसने मुझसे अपने एक नवीनतम कारनामे के बारे में बताया। 'हमें एक बूढ़ा मिला। हमने उसका मेडिकल निरीक्षण किया और खेल खत्म।' इफ्तिखार ने कहा, 'मैं उसे वहां खत्म कर देना चाहता था, लेकिन मेरे जवानों ने मुझे बताया कि इसे इतनी आसान मौत देना ठीक नहीं। फिर मैंने उसके शरीर पर अलग–अलग कोमल जगहों पर तीन गोलियां मारी और फिर सिर में गोली मारकर खत्म कर दिया।' जब मैंने मेजर इफ्तिखार का साथ छोड़ा तो वह ब्राह्मणबारिया की उत्तर दिशा में था। वह एक और किल एंड बर्न मिशन पर था।" (18)

"...पाकिस्तान सरकार ने सब कुछ ठीक हो गया है, यह दिखाने के लिए कई प्रोपेगंडा कार्यक्रम शुरू किए। प्रोपेगंडा फिल्म बनाने के लिए पाकिस्तानी टीवी के कुछ लोगों को बुलाया गया। लक्षम एक ऐसी जगह थी, जो प्रोपेगंडा कार्यक्रमों की धुरी बन गई थी और जहां पर प्रोपेगंडा कार्यक्रमों की सीरीज बनती थी, वेलकम परेड होती थी और शांति की बैठकें होती थीं। मैं आश्चर्यचकित था कि वे ऐसा कैसे कर सकते हैं। 39वीं बलूच बटालियन के लेफ्टिनेंट जावेद को लोगों का एक हुजूम जुटाने का काम दिया गया था। उसने कहा, 'अभी बहुत से हरामखोर बचे हैं जिन पर ऐसे टीवी कार्यक्रम किए जा सकते हैं।' उसने एक वृद्ध व्यक्ति को पास बुलाया

और कुछ पूछने की कोशिश की, वृद्ध ने अपना नाम मौलाना सईद मोहम्मद सईदुल हक बताया और कहा कि 'वह मुस्लिम लीग (मुस्लिम लीग की पाकिस्तान के गठन में अहम भूमिका थी) का एक निष्ठावान कार्यकर्ता है, आवामी लीग से उसका कोई संबंध नहीं है।' उसने जावेद से कहा कि 'अगर वह उसे 20 मिनट दे तो वह 60 लोगों को ला सकता है और अगर 2 घंटे का वक्त मिले तो 200 लोगों की भीड़ जुटा सकता है।' उसने ऐसा किया भी, देखते ही देखते 200 लोगों की भीड़ आ गई जो 'पाकिस्तान जिंदाबाद! पाक सेना जिंदाबाद! और मुस्लिम लीग जिंदाबाद! के नारे लगा रही थी। भीड़ में बूढ़े, बच्चे और जवान सब शामिल थे।"

"देखते ही देखते परेड सार्वजनिक सभा में बदल गई, जिसमें अलग–अलग समूहों में कई वक्ता लोगों को संबोधित कर रहे थे, बात कर रहे थे और विचार–विमर्श कर रहे थे। महबूब–उर–रहमान नाम के एक व्यक्ति को सेना के स्वागत में कुछ कहने के लिए आगे किया गया। उसने बताया कि वह एन.एफ. कॉलेज में अंग्रेजी और अरबी का प्रोफेसर है और वह ग्रेट मुस्लिम लीग पार्टी का आजीवन सदस्य है। उसने कहा कि पाकिस्तान के लिए 'पंजाबी और बंगाली दोनों एकजुट हैं और हमारी अपनी संस्कृति और परंपराएं हैं। लेकिन हमें हिंदू और आवामी लीग के नेता ड़रा रहे थे। हम अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं कि पंजाबी सैनिकों ने हमें बचा लिया। उसने कहा कि ये सैनिक पूरी दुनिया में सबसे उम्दा सैनिक हैं और ये मानवता के नायक हैं। हम उन्हें अपने दिल की गहराइयों से सम्मान देते हैं।' 'मीटिंग' खत्म होने के बाद जब मैंने मेजर से पूछा कि मीटिंग के बारे में उसका क्या ख्याल है, तो उसने कहा कि 'मकसद पूरा हुआ,' लेकिन साथ ही यह भी कहा कि 'मैं इन हरामखोरों पर अब भी विश्वास नहीं करता। मैं इन्हें अपनी सूची में रखूंगा।"(19)

लंदन टाइम्स में छपी मास्करेन्हास की रिपोर्ट में जून 1971 तक कई सूचनाएं और तथ्य शामिल थे, जिनकी वास्तविकता परखी जा चुकी थी। मास्करेन्हास एक पाकिस्तानी नागरिक था इसलिए उसकी इस रिपोर्ट का दुनिया भर में व्यापक असर हुआ और पाकिस्तान सरकार की साख को बड़ी चोट पहुंची।

पूर्वी पाकिस्तान से जो रिपोर्ट आ रही थी उसके आधार पर पाकिस्तानी सेना को लगने लगा कि पूर्वी पाकिस्तान में स्थिति सामान्य हो गई हैं। लेकिन सबसे भयानक घटना तो अब घटने वाली थी। 14 इन्फेंट्री डिवीजन पहले से ही बांग्लादेश में मौजूद थी। "ऑपरेशन सर्चलाइट" के अंतर्गत हिंदुओं और बंगाली विद्रोहियों को नियंत्रित करने के लिए खरियां में 9 इन्फैन्ट्री डिवीजन और मु ल्तान में 16 इन्फैन्ट्री डिवीजन को तुरंत पूर्वी पाकिस्तान में तैनात किया गया। 9 इन्फैन्ट्री डिवीजन का बेस कोमिल्ला में था जबकि 16 इन्फैन्ट्री डिवीजन का बेस था जेसोर में। 9 इन्फैन्ट्री डिवीजन के पास पूर्वी पाकिस्तान में ऑपरेशन सर्चलाइट की जिम्मेदारी दी गई थी। साथ ही उसे विद्रोहियों व आपूर्ति को रोकने के लिए भारत–बांग्लादेश की पूर्वी सीमा को भी सील करना था। इसी तरह 16 इन्फैन्ट्री डिवीजन को पश्चिमी बांग्लादेश में ऑपरेशन सर्चलाइट संभालना था। पाकिस्तानी सेना ऑपरेशन सर्चलाइट के पहले चरण में सफल रही और उसने मई के मध्य तक प्रमुख शहरों और कस्बों पर कब्जा कर लिया। इसके बाद सैनिकों को तलाशी अभियान में लगाया गया। (20)

जून के मध्य तक बांग्लादेशी मुक्ति संग्राम के लड़ाकों ने विभिन्न सरकारी संस्थानों पर हमले करने शुरू कर दिए। सेना का काफिला भी इनके निशाने पर आने लगा। वे विशेष रूप से

फोटो–7

परिवहन और संचार व्यवस्था को बड़ी चोट पहुंचाने लगे। 7 मई को फैनी पर पाकिस्तानी सेना के कब्जे से पहले चटगांव बंदरगाह से उत्तरी बांग्लादेश तक का रेल और रोड ट्रैक बांग्लादेशी लड़ाकों के हाथों में था। स्वाधीनता लड़ाकों ने छह बड़े पुल और हजारों छोटे पुलों को नष्ट कर दिया। इससे आम जनता के लिए आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति व्यवस्था चरमरा गई और बांग्लादेशियों पर अकाल का खतरा मंडराने लगा। पाकिस्तान के सैन्य अभियान के चलते खेती में भी बड़ी कमी आई। टिक्का खान ने 18 अप्रैल को अपने रेडियो संबोधन में खाद्यान्न की कमी का जिक्र किया था लेकिन पश्चिमी पाकिस्तान ने इस पर कोई चिंता जाहिर नहीं की। इस मसले पर चर्चा में पाकिस्तान कृषि विभाग के अध्यक्ष करानी ने बड़ी निष्ठुरता से कह दिया कि 'यह अकाल बंगालियों के विद्रोह का परिणाम है। इसलिए उन्हें मरने दो। शायद इसके बाद बंगालियों को कुछ बुद्धि आ जाए।' (21)

मई 1971 में पत्रकारों से बातचीत में पाकिस्तानी सेना के मेजर जनरल शौकत रजा ने पाकिस्तानी सेना की नीतियों का खुलासा किया। उसने कहा कि "हमने कोई अभियान नहीं चलाया है जिसमें जान या माल का नुकसान हुआ हो। हमने एक उत्तरदायित्व निभाया है और यह पूरा होने के बाद ही राजनेताओं को सौंपा जाएगा। इसे हम बीच में अधूरा नहीं छोड़ सकते।" उसने कहा कि "सेना हर तीन–चार साल बाद ऐसी कार्रवाई करने में सक्षम नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण काम था और मैं आपको आश्वस्त करना चाहता हूं कि जब यह पूरा हो जाएगा तब ऐसे किसी अभियान की आवश्यकता नहीं होगी।" शौकत रजा की ये बातें सही साबित हुईं और बांग्लादेश उसकी इस घोषणा के 6 महीनों के भीतर ही आजाद हो गया। पूरी दुनिया में किसी भी देश की सेना अपने ही देश के नागरिकों के साथ ऐसा बर्बरतापूर्ण बर्ताव नहीं कर सकती जैसा पाकिस्तान की सेना ने अपने देश के बंगाली नागरिकों के साथ किया।

पाकिस्तानी सेना ने जिस भी सरकारी कर्मचारी पर संदेह हुआ, उसे पद से हटा दिया। मास्करेन्हास ने अपनी रिपोर्ट में ऐसी कुछ घटनाओं का जिक्र भी किया है। बलूच रेजिमेंट का कैप्टन दुर्रानी कोमिल्ला हवाई अड्डे की सुरक्षा का जिम्मा संभालने वाली कंपनी का इंचार्ज था। किसी समस्या से निपटने का उसका अपना अलग ही तरीका था। उसने घोषणा की थी कि कंट्रोल टावर पर काम करने वाले बंगालियों पर अगर मुझे जरा भी संदेह हुआ तो मैं उन्हें गोली मार दूंगा। दुर्रानी ने ऐसा किया भी। कुछ दिन पहले ही शक के आधार पर उसने एक बंगाली को हवाई अड्डे पर गोली मारी थी। उसके पास गर्व करने का एक और कारण था। हवाई अड्डे के पास एक गांव में अभियान का श्रेय उसे ही जाता है जिसमें लगभग 60 लोग मारे गए थे। (22)

मेजर जनरल एसएस उबान ने 'फैन्टम्स ऑफ चटगांव' के नाम से एक पुस्तक लिखी है। जिसमें पाकिस्तान सेना के मासूम लोगों पर किए गए बर्बर अत्याचार का विभिन्न स्रोतों से मिली पुख्ता जानकारी के आधार पर जिक्र किया गया। "27 मार्च को सिलहट कस्बे में हर घर की तलाशी ली जा रही थी। गांव के सभी पुरुष अपने घरों को छोड़कर भाग गए थे, सिर्फ

महिलाएं ही बची थीं। एक 60 वर्षीय वृद्धा सहित सभी महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। एक लड़की के साथ बलात्कार करने के बाद उसके स्तनों को चाकू से काट दिया गया, उसकी कुछ ही देर में मौत हो गई। किसी भी बिहारी या बंगाली महिला को नहीं बख्शा गया। मुस्लिम लीग के एक नेता की बेटी को सैनिक अपने साथ उठाकर लेकर गए। पाकिस्तान के लिए काम करने वाले जीकाटोला मांकेश्वर के एक इंजीनियर के सामने ही उसकी मां, पत्नी और साली के साथ सैनिकों ने दिन–दहाड़े बलात्कार किया। पाकिस्तानी सेना ने बिहारी शरणार्थियों के साथ मिलकर चटगांव के पहाड़टोली इलाके में हमला किया, जिसमें 3000 बंगालियों की हत्या कर दी गई और सभी महिलाओं के साथ बलात्कार किया। 500 लड़कियों को वहां से छावनी ले जाया गया। वहां सैनिक उनके साथ दिन–रात बलात्कार करते थे। उन लड़कियों में से एक का कहना था कि कई जानवरों द्वारा किए गए बलात्कार का दर्द सहना संभव है, लेकिन शरीर में वीर्य के अत्यधिक संचय के चलते पैदा होने वाली गर्मी को सहन कर पाना असंभव होता है। वर्ष 1971 का अप्रैल महीना विशेष रूप से बलात्कारों के लिए ही निर्धारित किया गया था। 10 अप्रैल को चटगांव जिले के फटिकचोरी थाने के अंतर्गत निजीरहाट गांव को पाकिस्तानी सेना ने घेर लिया। लेकिन वहां न तो किसी को मारा गया, न कोई घर जलाया गया और न ही लूटपाट की गई। यहां लगभग 200 महिलाओं के साथ सैनिकों ने उनके पतियों एवं माता–पिता की आंखों के सामने बलात्कार किया। जनरल उबान ने लिखा है कि ये सभी महिलाएं मुस्लिम थीं। पाकिस्तान का खुलकर समर्थन करने वाले जमात–ए–इस्लामी के एक सदस्य की बेटी के साथ चार सैनिकों ने बलात्कार किया।" (23)

उबान आगे लिखते हैं, "दिनाजपुर की कुल आबादी में हिंदुओं की संख्या 40 प्रतिशत थी। उनमें से कुछ ही भारत जाने में सफल हो पाए। बाकी बचे हिंदुओं का पाकिस्तानी सेना ने सफाया कर दिया। कुछ ने इस्लाम धर्म अपनाने के लिए स्वीकृति दे दी ताकि उनका जीवन बच सके। लेकिन सभी को एक साथ गोली मार दी गई और एक गड्ढे में डालकर जला दिया गया। शीतल सरकार की एक रिपोर्ट के अनुसार सिग्निया गांव की आबादी लगभग 1500 थी, जो अभी भी बांग्लादेशी झण्डा फहराते थे, सभी को केवल आधे घंटे के अन्दर मारकर उनके शवों को गड्ढों में दफना दिया गया। चटगांव संभवतः सबसे अधिक प्रभावित हुआ था। 5–6 अप्रैल को पूरे कस्बे को सेना ने घेर लिया, घरों में लूटपाट की गई, महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। उसके बाद सभी महिलाओं को नग्नावस्था में जानवरों की तरह रस्सी से बांधकर नदी में नहाने के लिए ले जाया गया। 50 लड़कियां रामगढ़ सेना छावनी ले जाई गईं जहां हर एक महिला के साथ कम से कम 10 से 15 सैनिकों ने बलात्कार किया। बलात्कार के समय पाकिस्तानी 'जय बांग्ला' का नारा लगाते थे, जो कि स्वतंत्रता सेनानियों का नारा था। पाकिस्तानी सैनिक पीड़ितों से कहते थे कि वे चिल्लाकर अपने बाप 'शेख मुजीब' को मदद के लिए पुकारें। वहां पर सभी पीड़ित उच्च वर्ग के मुसलमान थे।

26 अप्रैल को बिहारियों ने पाकिस्तानी सेना की मदद से ढाका में 'बदले का दिन' चुना। इसके लिए जो क्षेत्र चुना गया वह मीरपुर और श्यामोली के बीच था और वहां उच्च वर्ग के मुसलमान रहते थे और जो मुख्यतः सरकारी कर्मचारी थे। पूरे क्षेत्र को पाकिस्तानी सेना ने घेर लिया। गैर–बंगालियों को अपनी हवस पूरी करने की छूट दी गई। लूट और पुरुषों की हत्या करने के बाद महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। ऐसी क्रूरता का जिक्र इतिहास में कहीं नहीं मिलता। कर्फ्यू के दौरान पाक सेना घरों से युवा लड़कों को उठाती थी, उनके हाथ बांध दिए

जाते और अस्पताल ले जाया जाता था। वहां उनके शरीर से खून निकाला जाता था। खून निकालने के बाद उन्हें मार दिया जाता था और उनके शवों को बूढ़ीगंगा में फेंक दिया जाता था। उबान लिखते हैं, "कम से कम सभी बंगालियों का खून इतना खराब नहीं था कि घायल पाक सैनिकों के लिए उसका उपयोग न किया जाए। बंगालियों का खून पंजाबी मुस्लिमों की रगों में जाते ही पवित्र हो जाता था।" (24)

उबान ने आगे लिखा, "मई 1971 के शुरुआती हफ्ते में लगभग 200 पाकिस्तानी सैनिकों ने ढाका और कोमिल्ला जिलों की सीमा से सटे एक गांव में हमला कर दिया और वहां के सैकड़ों निवासियों का बिना किसी गुनाह के कत्ल कर दिया। उनकी सम्पत्तियों को लूटा और महिलाओं के साथ बलात्कार किया। इस मिशन के पूरा होने के बाद पाकिस्तानी सैनिकों की मदद कर रहे मुस्लिम लीग के गजारिया के चेयरमैन ने सैनिकों को खाने पर आमंत्रित किया। चेयरमैन की बेटी खाना परोस रही थी। सैनिकों का कमांडर उस लड़की को अपने साथ ले गया। उसके साथ क्या हुआ आज तक किसी को कुछ नहीं पता।

...हाफिज मियां नाम के एक मासूम व्यक्ति के साथ पाक सेना द्वारा की गई प्रताड़ना की चर्चा सबसे अधिक होती है। 28 अप्रैल का दिन था, सुबह के करीब 7:30 बज रहे थे। सिलहट जिले के श्रीमंगल कस्बे पर पाकिस्तानी वायु सेना ने बमबारी कर दी। इससे अधिकांश लोग मारे गए। जिंदा बचे डरे व सहमे लोग बचने के लिए वहां से भागने लगे। 29 अप्रैल को पाकिस्तानी सेना ने कस्बे पर कब्जा कर लिया। वहां उन्होंने हाफिज मियां नाम के व्यक्ति को गिरफ्तार किया, जो इलाके के अनाज भंडार का प्रभारी था। वह अपनी ड्यूटी की जिम्मेदारियों के चलते वहां से भागा नहीं बल्कि उसको ऐसा लग रहा था कि इस निष्ठा के लिए पाक सरकार उसे इनाम देगी। लेकिन हाफिज पर सेना को शक था कि बिहारी रेलवे स्टेशन मास्टर की हत्या में उसने मुक्ति बाहिनी की मदद की और स्थानीय लोगों को उसके गोदाम से अनाज ले जाने की छूट दी थी। सेना ने इस बात पर भी बिल्कुल ध्यान नहीं दिया कि आसपास के सभी गोदाम लूट लिए गए थे, किसी में अनाज नहीं था। जबकि हाफिज मियां के गोदाम में लूट नहीं हुई और उसमें अनाज भरा पड़ा था।...

...मारे गए स्टेशन मास्टर के परिवार के सामने हाफिज मियां को टुकड़ों–टुकड़ों में काट दिया गया। जब उसे असहनीय पीड़ा देकर धीरे–धीरे काटा जा रहा था, उस समय उसके परिवार को भी वहीं पर प्रताड़ित किया जा रहा था। पहले हाफिज की उंगलियां धीरे–धीरे काटी गईं, उसके बाद उसके हाथ और पैर काटे गए। एक तरफ वह तड़प रहा था तो दूसरी तरफ उसके परिवार के लोगों को एक के बाद एक प्रताड़ित किया जा रहा था। यह भयानक क्रूरता कई घंटों तक जारी रही। हाफिज मियां की तीन लड़कियों के साथ बलात्कार किया गया और वहां से सेना उन्हें अपने साथ कहां ले गई, किसी को पता नहीं।

कुटी सेन नाम के एक हिन्दू को भारत जाते समय पकड़ लिया गया। उन्हें एक फुटबॉल मैदान में इकट्ठा हुए मुस्लिम लीग के कार्यकर्ताओं के हवाले कर दिया गया। पाक सेना के एक अधिकारी ने भाषण दिया जिसे बंगाली द्विभाषिए ने बंगाली में समझाया। उसने कहा कि सभी हिन्दू भारत के एजेंट हैं इसलिए मुस्लिमों का धार्मिक कर्तव्य है कि उनकी हत्या कर दें। कुटी सेन के हाथ और पैर रस्सी से बांध दिए गए। उन्हें मैदान में फेंक दिया गया। वहां मौजूद मुस्लिमों ने उन्हें फुटबॉल की तरह तब तक मारा जब तक कि उनकी मौत नहीं हुई। इस

Photo Co
should-n
change

घटना के बारे में जब उनके बेटे बाबला सेन को पता चला, तो वह छिपते–छिपाते वहां पहुंचा और जब उसने अपने पिता के शव की हालत देखी तो उसे इतना कष्ट हुआ कि उसने खुदकुशी करने की कोशिश की। लेकिन कुछ लोगों ने उसे समझा–बुझाकर ऐसा करने से रोक लिया।" जनरल उबान लिखते हैं कि "कम–से–कम उसने अपने पिता का अंतिम संस्कार तो किसी तरह कर लिया लेकिन हाफिज मियां के शव के कुछ टुकड़े अभी भी जमीन पर पड़े थे। यहां तक कि सियारों ने भी उन्हें नहीं खाया था।" (25)

उबान आगे लिखते हैं, "अप्रैल के तीसरे सप्ताह में सिलहट जिले के मौलवी बाजार पर सेना ने कब्जा कर लिया। यहां लूटपाट की गई और सभी संदिग्धों को मार दिया गया। सुंदर दिखने वाली सभी लड़कियां छावनी ले जाई गईं और उनके साथ सैनिकों ने बलात्कार किया। अगली सुबह उन्हें नग्नावस्था में एक खेल के मैदान में ले जाया गया और मुस्लिम लीग के नेताओं के सामने दिन भर नाचने का आदेश दिया गया। उसके बाद सभी को शिवपुर सेना छावनी ले जाया गया और उनके साथ क्या हुआ, किसी को नहीं पता। ढाका जिले के हलाती गांव में 1 अप्रैल 1971 को सबसे भयावह घटना घटी। यह गांव आवामी लीग समर्थक हिंदुओं का गांव था। इस गांव में आग लगा दी गई और इंसानों के साथ–साथ जानवर भी इस आग में जिंदा जल गए। जिन्होंने भागने की कोशिश की उन्हें मार दिया गया। लड़कियों को अपनी हवस पूरी करने के लिए जिंदा रखा गया। महिलाओं से उनके बच्चों को छीनकर उन्हें बंदूकों की बैनट की नोक पर रख दिया इसमें सिपाहियों को अपनी निपुणता और योग्यता नजर आ रही थी। महिलाओं के वक्ष चाकू से काट दिए गए और उन्हें बच्चों के शवों के मुंह में डाल दिया गया। जो जिंदा बचे थे उन्हें 'जय पाकिस्तान' के नारे लगाने को मजबूर किया गया।

...एक 6 साल का बालक गलती से 'जय बांग्ला' बोल उठा, जो अक्सर वह सुना और बोला करता था। यह सुनते ही एक सैनिक को इतना गुस्सा आया कि उसने उस मासूम को 50 टुकड़ों में काट डाला। और वहां जिंदा बचे हर एक व्यक्ति को मासूम शरीर का एक–एक टुकड़ा खाने के लिए दिया गया। जिसने ऐसा करने से मना किया उसे पाकिस्तान की महानता के नाम पर गोली मार दी गई। लड़कियों को कहा गया कि उन्हें डरने की जरूरत नहीं है। उन्हें चोट नहीं पहुंचाई जाएगी। उन्हें इसलिए चुना गया है ताकि उनके गर्भ में 'पाक' मुसलमानों का वीर्य जाए और वो 'पाक' मुसलमान बच्चों को जन्म दें, न कि मुजीब जैसे हरामी को। इन लड़कियों को टोंगी सेना कैंप ले जाया गया। गोल टेक, मोरकोन, पागर और अब्दुलपुर, इन चार गांवों पर मुक्ति बाहिनी के लोगों को शरण देने और विद्रोह करने का आरोप था। इन गांवों में आग लगा दी गई। लोगों से 30–30 के समूह में इकठ्ठा होने को कहा गया। पुरुषों को अपनी बहनों और बेटियों के साथ भीड़ के सामने ही बलात्कार करने को कहा गया। मना करने पर बच्चों सहित उनकी नृशंस हत्या कर दी गई। ये सभी लोग मुसलमान थे। कुछ स्थानों पर लोगों को आग में कूदने का आदेश दिया गया, वे लोग जिंदा जल गए। ऐसी दिल दहलाने वाली ढेरों घटनाएं पूर्वी पाकिस्तान में हुईं। ये घटनाएं इतिहास में पाकिस्तानी सेना के कलंक की गाथा के रूप में हमेशा के लिए दर्ज हो गई।" (26)

***

पाकिस्तान से भारत आने वाले शरणार्थियों की संख्या लगातार बढ़ती ही जा रही थी। अप्रैल में जहां प्रतिदिन 57 हजार के आसपास शरणार्थी आए थे वहीं मई में यह संख्या 1 लाख 20 हजार प्रतिदिन तक पहुंच गई। केवल मई महीने में ही लगभग 30 लाख शरणार्थी भारत आ चुके थे। 1971 के नवंबर महीने के आते–आते लगभग 1 करोड़ शरणार्थी भारत आ चुके थे। शुरुआत में शरणार्थियों की बढती संख्या का सबसे अधिक बोझ पूर्वी पाकिस्तान के पड़ोसी राज्यों पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, मेघालय और असम पर पड़ा। बढ़ती संख्या को देखते हुए कुछ शरणार्थियों को मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश भेजा गया। पश्चिम बंगाल ने लगभग 73 लाख 50 हजार शरणार्थियों की देखभाल की। समान भाषा के चलते बांग्लादेशी, पश्चिम बंगाल में अधिक सुरक्षित महसूस करते थे।

पाकिस्तान से भारत आ रहे शरणार्थियों की स्थिति पर नजर रखने वाली इंटरनेशनल रेसक्यू कमेटी इमरजेंसी मिशन के चेयरमैन एंगियर बिडल ड्यूक ने अमेरिकी सरकार के रिफ्यूजी मामलों के सचिव के विशेष सहायक एफ. एल. केलॉग को 28 जुलाई 1971 को अपनी रिपोर्ट सौंपी। इसके कुछ अंश नीचे के पैराग्राफ में दिए गए हैं।

"शुरुआत में शरणार्थी सड़क के रास्ते से भारत पहुंच रहे थे लेकिन जब से विश्व भर की मीडिया में पाक सेना के आतंक और बर्बरता की कहानी प्रकाशित होनी शुरू हुई और दुनिया के देशों ने इसका संज्ञान लेना शुरू किया, उसके बाद जून के पहले सप्ताह में पाकिस्तानी सेना ने भारत आने वाली सड़कों को सील कर दिया। हालांकि शरणार्थी जंगल के रास्ते आने लगे ताकि वो पाक सेना की नजरों से बच सकें। शुरुआत में उन्हें सभी उपलब्ध सरकारी भवनों में जगह दी गई। कुछ को स्कूलों में भी शरण दी गई। लेकिन जब संख्या बढ़ने लगी तब उन्हें सड़कों के किनारे पनाह दी गई। शरणार्थी शिविर लगाने के लिए खुली जगह और पानी की उपलब्धता प्राथमिक जरूरतें थी। अधिकांश शरणार्थी शिविरों की बजाए समुदायों में घुल–मिल कर रहना चाहते थे। शरणार्थी शिविरों का आकार कुछ सौ की क्षमता से लेकर 50 हजार की क्षमता तक था। ...इसके लिए भारत सरकार और पश्चिम बंगाल राज्य ने असाधारण प्रयास किए और यह सुनिश्चित किया कि शरणार्थियों को कम से कम सामान्य भोजन और पानी मिल सके। अधिकांश शिविर गांवों के आसपास लगाए गए थे।..."

फोटो–8

..."शिविर के लिए ऊंचे स्थान का चयन प्राथमिकता थी। लेकिन हर क्षेत्र में ऐसा करना संभव नहीं था। खासकर पश्चिम बंगाल के मैदानी इलाकों में। उपलब्ध भवनों में शुरू में आए लोगों ने शरण ली। जबकि बाद में आने वाले शरणार्थियों के लिए तीन प्रकार के शिविर बनाए गए। पहली तरह के शिविर स्थानीय तौर पर उपलब्ध संसाधनों से छोटे–छोटे झोपड़ें बनाए गए। दूसरी तरह के शिविर लकड़ी के फ्रेम पर तिरपाल से बनाए गए। तीसरी तरह के शिविर सीमेन्ट से बनी शीट से तैयार किए गए। शरणार्थियों की

अचानक बढती संख्या के चलते एक समय ऐसा आ गया जब भारत में उपलब्ध सभी तिरपाल खत्म हो गए। तिरपाल की मांग इसलिए और बढ़ गई क्योंकि भारतीय सेना, सीमा सुरक्षा बल (बीएसएफ) और मुक्ति बाहिनी को भी अपने अस्थाई शिविरों के लिए इसकी जरूरत थी। इस जरूरत को पूरी करने के लिए प्लास्टिक का इस्तेमाल किया जाने लगा। पानी की जरूरत जमीन में बोरिंग करके पूरी की गई। हालांकि स्वच्छता कायम करना एक समस्या थी। शुरुआत में शिविरों के पास गड्ढे खोदकर अस्थाई शौचालय बनाए गए। लेकिन जल्द ही यह महसूस किया गया कि इससे स्वास्थ्य संबंधी समस्या पैदा हो सकती है, खासकर तब जब मानसून सीजन में भारी बारिश होगी। इससे निपटने के लिए अधिक स्थाई उपाय किए गए।" (27)

रिपोर्ट में आगे कहा गया, "शरणार्थियों का खान–पान राहत एजेंसियों द्वारा की जा रही आपूर्ति पर निर्भर था। उन्हें मुख्यतः उबला चावल, दालें और दूध पाउडर दिया जा रहा था। कभी–कभी हरी सब्जियां भी खाने के लिए दी जाती थीं। स्वास्थ्य से जुड़ी चिकित्सा सुविधा भी उपलब्ध थी। अधिकांश शिविरों में मोबाइल चिकित्सा इकाई पहुंचाई जाती थी जो जरूरतमंदों को सामान्य उपचार और दवाइयां उपलब्ध कराती थी। मानसून के महीनों में शरणार्थी सबसे ज्यादा पेट और त्वचा से जुड़ी बीमारियों की चपेट में आते थे। उल्टी–दस्त आम बीमारी हो गई थी। यह अच्छी बात थी कि कुछ बांग्लादेशी चिकित्सक भी भारत आने में सफल हुए थे। इनमें से अधिकतर बांग्लादेश रेड क्रॉस के साथ पंजीकृत थे, जिसकी स्थापना डॉ. हक ने की थी।"...

..."पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा, असम और मेघालय राज्य के स्वास्थ्य मंत्री स्थिति पर नजर रखने और बेहतर व्यवस्था के लिए प्रायः बैठकें करते थे जिसमें बांग्लादेश रेड क्रॉस के सदस्य भी शामिल होते थे। 1971 में जून के आखिरी दिनों में सभी के स्वास्थ्य की सामान्य जांच के लिए शिविरों में एक अभियान शुरू किया गया। बांग्लादेशी डॉक्टरों को भी संबंधित राज्य सरकार मानदेय का भुगतान करती थी। उनकी पढ़ाई और अनुभव के आधार पर उन्हें 2 से 3 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन का भुगतान किया जा रहा था। भारत सरकार, संबन्धित राज्य सरकारें और अंतर्राष्ट्रीय रेड क्रॉस शरणार्थियों की देखभाल और स्वच्छता के लिए मिलकर कार्य कर रहे थे। बच्चों की पढ़ाई का भी ध्यान रखा गया। कलकत्ता विश्वविद्यालय के एक समूह ने बांग्लादेश से आए शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े शरणार्थियों को पंजीकृत किया। विभिन्न श्रेणियों में लगभग 10 हजार शिक्षकों को पंजीकृत किया गया। प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा के लिए पंजीकृत शिक्षकों को 25 डॉलर और विश्वविद्यालय के लिए पंजीकृत शिक्षक को 40 डॉलर का भुगतान किया जा रहा था। समिति की रिपोर्ट के मुताबिक स्कूलों में प्रशासनिक कामकाज का अनुभव रखने वालों को शिक्षण संस्थानों में प्रशासन के काम में लगाया गया।" अमेरिका को सौंपी गई इस रिपोर्ट में बांग्लादेशी शरणार्थियों की अच्छी देखभाल के लिए भारत की तारीफ की गई। रिपोर्ट में कहा गया कि "ऐसे आपातकाल में बेहद क्षमतावान अमेरिका के लोगों की प्रतिक्रिया और रवैया अच्छा नहीं रहा। आमतौर पर ऐसी आपात स्थितियों में वह मदद के लिए खड़ा नजर आता है, लेकिन यहां इसका रवैया बिल्कुल भी अच्छा नहीं रहा।" (28)

23 अप्रैल 1971 को भारत ने संयुक्त राष्ट्र के महासचिव यू थान्ट को शरणार्थी मुद्दे पर आधिकारिक रूप से तलब करने का फैसला किया। भारत ने, 'Denouncing Pakistan's brutality in East Bengal amounting to genocide' नामक शीर्षक से एक पत्र

यूनाइटेड नेशंस हाई कमिश्नर फॉर रिफ्यूजीज (यूएनएचसीआर) को लिखकर सहयोग का आग्रह किया। दिसम्बर 1949 में दिल्ली में यूएनएचसीआर का कार्य प्रारम्भ किया गया था। लेकिन 1950 के दशक में भारत इसे आलोचनात्मक दृष्टि से देखता था। इसके बावजूद 1959 में चीन के तिब्बत पर आक्रमण के बाद भारत ने यूएनएचसीआर से मदद मांगी, और संस्था ने तिब्बती शरणार्थियों की देखभाल में काफी योगदान दिया। 1969 में, भारत सरकार ने यूएनएचसीआर को नई दिल्ली में अपना कार्यालय स्थापित करने की अनुमति दे दी। 1971 में संस्था शुरूआती तौर पर ठीक से काम कर रही थीय हालांकि जब संस्था के उच्चायुक्त, प्रिंस सदरुद्दीन आगा खान ने अपने अधिकार क्षेत्र को लांघकर मध्यस्थ की भूमिका निभाने की कोशिश की, तो भारत को विरोध करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

26 अप्रैल को बर्न में यूएनएचसीआर की प्रशासनिक परामर्श समिति से सलाह के बाद यू थान्ट ने यूएनएचसीआर को बांग्लादेशी प्रवासियों के लिए सहायता कार्यों के समन्वय के लिए नोडल एजेंसी घोषित कर दिया। पाकिस्तान सरकार ने यू थान्ट के इस फैसले और भारत द्वारा बताई गई शरणार्थियों की संख्या को अधिक बताकर अपना विरोध प्रकट किया। उसका कहना था कि भारत इसे राजनीतिक रंग दे रहा है। संयुक्त राष्ट्र परिषद में पाकिस्तान के स्थाई प्रतिनिधि आगा शाही ने 4 मई को एक पत्र भेजा, जिसमें लिखा था कि भारत ने यूएनएचसीआर की मदद लेने का प्रयास इस मुद्दे का अंतर्राष्ट्रीकरण करने के लिए किया। इससे वो पाकिस्तान के आंतरिक मामलों में दखल दे रहा है। उसने भारत पर आरोप लगाया कि वो भारतीय मुसलमान शरणार्थियों को पाकिस्तान भेजने के लगातार प्रयास कर रहा है। पाकिस्तान ने यूएनएचसीआर की भारत के दबाव के सामने झुकने की कड़ी निंदा की। फिर भी संयुक्त राष्ट्र (यूएन) के महासचिव ने पाकिस्तान के विरोध की परवाह किए बिना अंतर्राष्ट्रीय समुदाय से बांग्लादेशी शरणार्थियों की मदद करने की अपील की। साथ ही उन्होंने 19 मई 1971 को संस्था के आपातकालीन अनुदान से 5,00,000 अमेरिकी डॉलर (उच्चतम सीमा) की सहायता राशि भी स्वीकृत कर दी। उनकी अपील के कुछ ही हफ्तों बाद अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने शरणार्थियों के लिए 17 मिलियन अमेरिकी डॉलर की सहायता राशि जुटाई। विश्व खाद्य कार्यक्रम (डब्ल्यूएफपी) ने 3.1 मिलियन अमेरिकी डॉलर की कीमत वाली खाद्य सामग्री प्रदान की। यूनिसेफ ने भी दूध पाउडर, दवाएं और वाहन मदद के लिए भेजे। 12 से 19 मई के बीच, उप–उच्चायुक्त चार्ल्स मेस के नेतृत्व में यूएनएचसीआर के एक तीन–सदस्यीय दल ने भारत का दौरा किया और अपनी रिपोर्ट यू थान्ट को सौंपी। (29)

18 मई को यू थान्ट ने अंतर्संस्था परामर्श के लिए संयुक्त राष्ट्र के सभी कार्यक्रमों और संस्थाओं की एक प्रेस–वार्ता बुलाई। इंटरनेशनल रेड क्रॉस को भी आमंत्रित किया गया। उच्चायुक्त प्रिंस सदरुद्दीन आगा की अध्यक्षता में संयुक्त राष्ट्र के स्थाई अंतर्संस्था दल का गठन राहत–कार्यों के समन्वयन के लिए किया गया। भारत में केंद्र सरकार के सभी क्रियाशील मंत्रालयों की एक समन्वय समिति का गठन किया गया। समिति ने सभी प्रदेशों में रह रहे शरणार्थियों से जुड़े राहत–कार्यों को समन्वित किया। पाकिस्तान और अमेरिका ने भारत द्वारा बताई गई शरणार्थियों की संख्या पर संदेह प्रकट किया। याह्या खान ने उन्हें 'आभासी शरणार्थी' करार दिया, उसके अनुसार वे कोलकाता की झुग्गी–बस्तियों से विस्थापित लोग थे। पाकिस्तान सरकार और मीडिया ने अपने देश के नागरिकों को यह कहकर गुमराह करने की कोशिश की कि केवल भारतीय जासूस ही भारत में प्रवासित हुए हैं। बाद में उन्होंने ऑल

इंडिया रेडियो और भारतीय जासूसों पर आरोप लगाया कि लोगों को भारत जाने के लिए उकसाने के मकसद से वे इस तरह का प्रचार कर रहे हैं। हेनरी किसिंजर ने भी भारत द्वारा पेश किए गए इन आंकड़ों पर विश्वास नहीं किया। सितम्बर में व्हाइट हाउस में विशेष कार्रवाई समूह के एक सम्मेलन में उन्होंने कहा कि भारत में 20 लाख (दो मिलियन) से ज्यादा शरणार्थी नहीं है, जबकि भारत ने यह संख्या 80 लाख (आठ मिलियन) होने का दावा किया था। हालांकि भारत से हाल ही में वापस लौटे अमेरिकी सरकार के एक अधिकारी ने यह आंकड़ा 60 लाख (छह मिलियन) बताया। कई जाने–माने व्यक्तियों और राहत–शिविरों में कार्यरत यूएनएचसीआर के कर्मियों ने भारत के दावे को सही ठहराया। (30)

अप्रैल और जून 1971 के बीच, मैंने (ब्रिगेडियर आर पी सिंह) कई बार पश्चिम बंगाल के शरणार्थी शिविरों का दौरा किया। वहां मैंने अलग–अलग आयु–वर्ग की महिलाओं और पुरुषों से बातचीत की। उनको देखकर और उनकी आपबीति सुनकर मैं कंपकंपा उठा। पाकिस्तानी सेना पागल हो गई थी और उसने क्रूरता की सारी हदें पार कर दी थीं। अप्रैल 1971 में, मैं नोर्विच, यूनाइटेड किंगडम (यूके) के पादरी जॉन हास्टिंग्स से मिला, जो लीसेस्टर के गिरजाघरों में कार्यरत थे। अप्रैल 1971 से, पादरी हास्टिंग्स ने राहत–कार्यों में लगे संगठनों के साथ मिलकर काम करना शुरू कर दिया। उन्होंने कई शरणार्थी–शिविरों का दौरा किया। कुछ शिविरों में मैं भी उनके साथ गया। वहां उन्होंने जो सुना और देखा, उसका विवरण बांग्लादेश डाक्यूमेंट्स वॉल्यूम–दो में दिया गया है। अप्रैल से अक्टूबर 1971 तक के कुछ ऐसे ही उदाहरण यहां दिए गए हैं, जिसमें उन्होंने बांग्लादेश में हुए दर्दनाक नरसंहार का उल्लेख किया है। "... सात हफ्तों के बाद भी पाकिस्तानी सेना के बर्ताव में कोई बदलाव नहीं आया है। विश्वास न कर सकने जैसी कहानियों के अनुसार, बच्चों को उठाकर फेंक दिया जाता और काट दिया जाता था, महिलाओं के कपड़े उतार दिए जाते और उनके गुप्तांगों को काट दिया जाता था। लेकिन ये कहानियां केवल इसलिए ही विश्वसनीय नहीं थीं क्योंकि कई लोगों ने इन्हें अनुभव किया था, बल्कि इसलिए भी थीं क्योंकि उन लोगों में न इतनी भयानकता सोचने की चालाकी थी और उनका उसमें कोई भी राजनीतिक मकसद या फायदा नहीं था। ...हमनें वहां एक महिला का कटा हाथ और एक बच्चे का कटा हुआ पैर देखा। ये लोग सीमा से काफी दूर थे और उनके घाव सड़ गए थे। इनमें से कइयों ने अपनी बेटियों के साथ बलात्कार होते और बच्चों के सिर कलम होते हुए देखे थे। कुछ ने अपने पतियों, बेटों और पोतों को बहुत ही क्रूर तरीके से मरते हुए देखा था। ...कोई भी मादक दवा अब बोनगांव अस्पताल में रोती हुई लड़की को शांत नहीं कर पाएगी वह लगातार रोते हुए एक ही बात कह रही थी, 'वे हम सबको मार देंगे, वे हम सबको मार देंगे...।' उसके बराबर में एक अन्य लड़की अभी भी उसके साथ कई दिनों तक हुए बलात्कार और योनि के काटे जाने के घाव से कांप रही थी। भारत की ओर जा रहे करीब 400 लोगों को घेरकर चौदंगा में जनसंहार कर दिया गया। क्यों? कहीं वे अपने साथ हुए अत्याचारों की कहानियां भारत न ले जाएं! या फिर शेख मुजीब के नेतृत्व में एक लोकतांत्रिक तंत्र को चुनने का मतलब था किसी भी देश में जीने का अधिकार खो बैठना?" (31)

25 जून 1971 को 'द हांगकांग स्टैण्डर्ड' ने अपने सम्पादकीय में लिखा, "सैकड़ों वर्षों तक चंगेज खां इतिहास में क्रूरता और कसाईपन के लिए कुख्यात था। बीसवीं सदी में ऐसा लगता है जैसे एक पाकिस्तानी महान हत्यारा अपने क्रूर पूर्ववर्ती को पीछे छोड़ने पर आमादा है। पाकिस्तानी जनरल टिक्का खान– जिसे पूर्वी पाकिस्तान का "शान्ति–स्थापक" कहा जाता

Phot

है– उन बर्बर पंजाबी और पठान जवानों की कमान संभाल रहा है, जो भयावह खून–खराबे में पागल और जंगली हो गए हैं। बच्चों के बेमतलब संहार, बलात्कार, वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा की गई वेश्यावृत्ति और पागल व जंगली, खूनी जनसंहार के कई सबूत मिलते हैं। चंगेज खां ने अपने जीवन में कम से कम एक साम्राज्य तो खड़ा किया था। मगर टिक्का खान और उसके वर्दीवाले उपद्रवी सैनिक देश की लगभग आधी जनसंख्या का विनाश करने वालों के रूप में याद किए जाएंगे।"

12 मई 1971 को संयुक्त राष्ट्र परिषद में भारत के स्थाई प्रतिनिधि समर सेन ने आर्थिक और सामाजिक परिषद (ईसीओएसओसी) की सामाजिक समिति में बांग्लादेश मुद्दे को 'रिपोर्ट ऑफ द कमीशन ओन ह्यूमन राइट्स' के नाम से उठाया। उन्होंने मानवाधिकारों से जुड़े संयुक्त राष्ट्र के सभी 34 आधारों को रखा और कहा कि पाकिस्तानी सेना ने पूर्वी पाकिस्तान में इन सभी का हनन किया है। इसके बाद उन्होंने बांग्लादेश से लोगों का पलायन रोकने के लिए संयुक्त राष्ट्र के संरक्षण में एक समन्वित राहत–कार्यक्रम चलाए जाने की भी बात कही। संयुक्त राष्ट्र परिषद में पाकिस्तान के स्थाई प्रतिनिधि आगा शाही शरणार्थियों के सवाल पर घिर गए लेकिन उन्होंने कहा कि शरणार्थियों की संख्या भारत ने बढ़ा–चढ़ा कर पेश की है। उन्होंने भारत को चेताया कि वो पाकिस्तान के आंतरिक मामलों में दखल न दे। शाही ने भारत पर शरणार्थी मुद्दे का राजनीतिकरण करने का आरोप लगाया। शाही की बातों का जवाब देते हुए समर सेन ने परिषद में पांच सुझाव रखे, जो निम्नलिखित थे:

1. पाकिस्तान सरकार मानवाधिकारों का हनन रोके।
2. भारत सरकार को द्विपक्षीय या अंतर्राष्ट्रीय, सरकारी या गैर–सरकारी, सभी तरह का सहयोग मिलना चाहिए ताकि शरणार्थियों की बढती संख्या से प्रकट हुई अभूतपूर्व स्थिति से निपटा जा सके।
3. समस्यायों को जड़ से मिटाने के लिए पूर्वी पाकिस्तान के लोगों को राहत पहुंचानी होगी। इन उपायों के सफल कार्यान्वन के लिए यूएनएचसीआर के प्रतिनिधियों की बांग्लादेश में तैनाती की जाए, जिससे वे पाकिस्तानी सेना के नरसंहार को देख पाएं।
4. पाकिस्तान सरकार शरणार्थियों की अपने देश में जल्द वापसी को सुनिश्चित करे।
5. संयुक्त राष्ट्र के महासचिव स्वयं स्थिति की निगरानी करें और जरूरत के मुताबिक अपने सुझाव दें।

समर सेन ने कहा कि चूंकि यह एक अंतर्राष्ट्रीय समस्या है लिहाजा इसके लिए अंतर्राष्ट्रीय समाधान की ही जरूरत है। (32)

सहायता प्रदान करने वाले देश बांग्लादेश में राहत कार्य की गति से असंतुष्ट थे। सितम्बर में संयुक्त राष्ट्र के महासचिव यू थान्ट ने इन देशों की नाराजगी को जाहिर करते हुए कहा, "पूर्वी पाकिस्तान में राहत कार्य मेरे आदेश और जरूरत के मुताबिक बहुत कम हैं। पाकिस्तान सरकार और राहत कार्यों में लगे संगठनों से बात करने के बाद मुझे सहायता प्रदान करने वाले देशों को यह आश्वासन देने में बड़ी मशक्कत करनी पड़ी कि उनके द्वारा दी गई सहायता जरूरतमंद लोगों तक अवश्य पहुंचेगी।" ऑक्सफेम जैसे कुछ गैर–सरकारी संगठनो ने उनके देशों की सरकारों की सोच पर गहरा प्रभाव डाला। उन देशों की सीमित मदद की काफी आलोचना हुई और उन संगठनों की वजह से उन देशों की सरकारों का नजरिया

पाकिस्तान के प्रति बदला। खासकर कि यूनाइटेड किंगडम (यूके) और कनाडा की सरकारों ने बांग्लादेश में पाकिस्तानी सेना के अत्याचारों की काफी आलोचना की।

बांग्लादेश के शरणार्थियों की मदद करने को लेकर परोपकारी संगठन भी संयुक्त राष्ट्र के महासचिव के जितने ही उत्सुक थे। इसके लिए उन्होंने अपने देशों की सरकारों के साथ–साथ परिषद पर भी दबाव डाला। उन्होंने दावा किया कि राहत कार्य में संयुक्त राष्ट्र की संस्थाओं की भी अहम भूमिका है। उनके दावों का पश्चिमी मीडिया और पश्चिमी देशों की सरकारों ने समर्थन किया। इसके परिणामस्वरूप, परिषद के महासचिव यू थान्ट ने स्टीफन आर. ट्रिप को बांग्लादेश में अंतर्राष्ट्रीय परोपकारी सहायता का समन्वयक नियुक्त किया। एक जुलाई 1971 से, ट्रिप ने जेनेवा स्थित अपने कार्यालय से काम करना शुरू कर दिया। न्यूयॉर्क में राजनयिकों ने बांग्लादेश संकट को आजादी के लिए संघर्ष और मानवाधिकारों के हनन के रूप में देखा। लेकिन जेनेवा में इसको मानवीय आधारों पर पेश किया गया और पाकिस्तान की निंदा की गई। (33)

5 जून को अमेरिका के सहायक विदेश मंत्री जोसेफ जे. सिस्को ने संयुक्त राष्ट्र में पाकिस्तान के स्थाई प्रतिनिधि हिलाली को आड़े–हाथों लेते हुए कहा कि 'ऐसी कई रिपोर्ट्स हैं जिनसे पता चलता है कि पाकिस्तानी सेना ने हिन्दुओं को विशेष रूप से अपना निशाना बनाया है', इसकी वजह से वे सुरक्षा की तलाश में भारत की ओर रुख करने पर मजबूर हुए। इसके अलावा यह भी पता चला है कि जो हिन्दू अभी भी पूर्वी पाकिस्तान में जिंदा बचे हुए हैं, उनका भी दमन किया जा रहा है। (34)

पाकिस्तानी खेमा हमेशा से ही इस पूर्वाग्रह से ग्रस्त था कि बंगाली हिन्दुओं ने ही बांग्लादेश में राष्ट्रवादी तत्वों को उकसाया और उनका नेतृत्व किया है। विश्व समुदाय को मार्च 1971 के अंतिम सप्ताह से इस नस्ली नरसंहार कार्रवाई की सूचनाएं विभिन्न स्रोतों से मिलने लगी। पत्रकारों, राहत–संगठनों के कार्यकर्ताओं, मिशनरियों, पाकिस्तान से जिंदा बचकर भागने वालों और शरणार्थियों ने विस्तृत जानकारी दी कि कैसे हिन्दुओं को विशेष रूप से निशाना बनाया जा रहा है और हिन्दू महिलाओं के साथ बलात्कार किए जा रहे हैं।

13 फ्री स्कूल स्ट्रीट, धनमोंड़ी, ढाका के निवासी मोहम्मद सिद्दीकी का पुत्र मोहम्मद शोहिदुल इस्लाम, पाकिस्तान के अपराध–क्षमा प्रस्ताव का लाभ उठाने भारत के एक शरणार्थी शिविर से आठ अन्य साथियों के साथ वापस पूर्वी पकिस्तान लौट रहा था। उन्हें पाकिस्तानी सेना ने गिरफ्तार कर लिया और अखौरा रेलवे स्टेशन के गोदाम में एक जगह इकट्ठा कर लिया। उसके अनुभव के अनुसार "...सेना के कैप्टन ने बताया कि 'शरणार्थियों' को गोली मार दी जाएगी और तस्करों को चौदह वर्ष के कठोर कारावास की सजा होगी। उसके वहां से जाने के बाद द्वार को बंद कर दिया गया। ...हमने 22 दिन उस अंधेरे भरे गोदाम में गुजारे... एक पंजाबी सेनाधिकारी रजिस्टर लेकर आया और उसमें हमारे नाम दर्ज कर दिए। उसने बताया कि अगली सुबह हमें रिहा कर दिया जाएगा। सभी खुशी से झूम उठे और एक–दूसरे को गले लगाया। अचानक से हमारा ध्यान बच्चू नाम के छोटे बच्चे की ओर गया, जो मुझसे अपने सारे सुख–दुख बांटता था। पूछने पर पता चला कि उसके अलावा प्रमोद, अमर और गौरांग के नाम भी रजिस्टर में नहीं लिखे गए थे। ये सभी हिन्दू थे। यह माना जा रहा था कि उन सभी को मार दिया जाएगा। बच्चू को दिलासा देने के लिए हमारे पास कोई भी शब्द नहीं बचे थे।"...

..अगले दिन सभी को गोली मार दी गई। केवल शोहिदुल इस्लाम ही जिंदा बचा था क्योंकि वह पाकिस्तानी सेना की क्रूर कार्रवाई के दौरान बेहोश हो गया था। (35)

मैं (ब्रिगेडियर आर पी सिंह) इन सभी घटनाओं की जानकारी मिलने के दौरान पादरी हास्टिंग्स के साथ था। "हमने अप्रैल से भारत–बांग्लादेश सीमा का दौरा करना शुरू किया और शुरूआती कुछ ही दिनों में हमें एहसास हो गया कि काफी लोग पाकिस्तानी सेना के अत्याचार की वजह से सदमे में थे। उनमें से कुछ लोगों ने अपने बच्चों को गंवा दिया था, तो कुछ ने बताया कि उनके बच्चों को काटकर मार डाला गया और कुछ को फायरिंग स्कवॉड के सामने खड़ा कर गोलियों से भून दिया गया। कुछ लोग मृत होने का नाटक करके पड़े रहे और मौका मिलने पर वहां से भाग निकले। अस्पतालों में मैंने ऐसे कई घायलों को देखा जिनके कंधों पर गोली के घाव थे। बेरहमपुर अस्पताल में मैं 65 साल के एक बुजुर्ग से मिला। उसने मुझे अपनी कहानी बताई (जिसे मैंने रिकॉर्ड कर लिया) कि कैसे सैकड़ों लोग राजशाही क्षेत्र से भागकर गंगा नदी के तटों पर आए। वहां उन्हें पाकिस्तानी सैनिकों ने घेर लिया और गंगा नदी पार करने से रोक दिया। पाकिस्तानी सेना ने महिलाओं और लड़कियों को घर जाने की अनुमती दे दी। पुरुषों और लड़कों को रेत पर बैठने के लिए कहा गया। उन सभी के पास मशीन गन थीं। कइयों को तुरंत ही मार दिया गया, तो बाकियों ने मृत होने का नाटक किया। उसके बाद उन सभी को उठाकर ईंधन की तरह आग में फेंक दिया। उनके ऊपर पेट्रोल डाला गया। वह बुजुर्ग और उसका बेटा मुर्दों के ढेर से बचकर भाग निकले। आग में बुरी तरह झुलसे लोग तुरंत ही गंगा नदी की ओर दौड़ने लगे। वह शाम के करीब का वक्त था। पाकिस्तानी सैनिकों ने उन पर गोलियां चलानी शुरू की लेकिन अंधेरे की वजह से निशाना साधना आसान नहीं था। उनमें से कुछ आग से जलने के कारण मर गए थे। यह बुजुर्ग कुछ अन्य लोगों के साथ रात भर छिपकर रहे और आखिरकार बेहरमपुर अस्पताल पहुंचने में सफल हुए। वह एक महीने बाद भी वहीं पर था, अभी भी उसके पैर बुरी तरह जले हुए थे, शरीर पट्टियों से ढका हुआ और वही खून के दाग से सनी धोती पहने हुए था। मैं उसी अस्पताल के एक दूसरे विभाग में गया और एक और आदमी को देखा, जिसने बुजुर्ग की उसी कहानी की पुष्टि की। वे एक ही समूह में थे। यह घटना 12 अप्रैल के आस–पास घटी होगी।" (36)

पादरी जॉन हास्टिंग्स आगे बताते हैं, "दिनाजपुर जिले के लोग अप्रैल और मई में भारी संख्या में शरण लेने भारत आए। उनमें से कई तो बिल्कुल नग्न थे। उन पर रात में हमला किया गया और उनके कपड़े उतार दिए गए थे। उसी अवस्था में वे भागते हुए आ गए। अप्रैल के एक दिन हिली गांव में मैं वहां पर मौजूद था, तो पाकिस्तानी सेना गोलीबारी कर रही थी। ...और इनमें से कुछ गोलियां गांव के शरणार्थी शिविर तक पहुंच गई थीं, जो कि सीमा के काफी पास स्थित था। भारत सरकार ने इस शिविर को शरणार्थियों से खाली कराने का निर्णय लिया। उसी जगह, उसी सुबह, मैंने एक लड़की को मृत शिशु के साथ देखा। यह शिशु काफी स्वस्थ दिख रहा था और न ही बीमार लग रहा था, लेकिन वह दूध न मिलने और शायद निमोनिया के कारण मर गया था। उसे किसी तरह की चिकित्सा नहीं दी गई। उसकी मां लोगों की भीड़ में थी, जिसे पिछले दो–तीन दिनों तक हिली की एक स्कूल इमारत में पनाह दी गई थी। इनमें से ज्यादातर लोग महज तीन या चार मील दूर ही रहते थे और उनके गांवों को पाकिस्तानी सेना ने जला दिया था। यह लड़की केवल पन्द्रह या सोलह साल की थी, और यह उसी का बच्चा था। डरी और सहमी वह अपने बच्चे को लेकर भाग आई थी। करीब 500 लोगों के साथ

फोटो–9

वह रेलवे लाइन को पार कर हिली गांव पहुंची थी। लेकिन डर और घबराहट के कारण उसका दूध सूख गया था। हालांकि वह इससे अवगत थी और काफी भीगी हुई थी। (मुझे याद है उस दिन काफी बारिश हुई थी) इतनी भीड़–भाड़ में वह किसी का ध्यान अपनी समस्या और पीड़ा की ओर नहीं खींच पाई। हालांकि सभी के पास दूध उपलब्ध था, लेकिन उसने शिशु की जरूरतों के बारे में किसी से कुछ नहीं कहा। इसीलिए शिशु की मृत्यु हो गई थी, और इसका पता अगली सुबह को चला।" (37) (ब्रिगेडियर आर पी सिंह पादरी जॉन हास्टिंग्स के साथ मौजूद थे और उन्होंने स्वयं सब कुछ देखा था)

पादरी हास्टिंग्स ने आगे कहा, "बाद में उस सुबह मैंने पाकिस्तान की ओर रेलवे लाइन के आस–पास देखा और मैंने पाया कि जहां पर चावल का एक भंडार हुआ करता था, उसे आग के हवाले कर दिया गया था। पाकिस्तानी सैनिक वहां खड़े होकर इसका लुत्फ उठा रहे थे और दूसरी ओर खड़े कुछ सैनिक हमारी तरफ बन्दूक साधे खड़े थे। हम अन्दर गए और देखा कि दूसरा गांव भी योजनाबद्ध तरीके से जला दिया गया था, अचानक से एक ओर धुंआ होता था, तो कुछ ही दूरी पर बड़ी आगजनी शुरू होने लगती। मैंने उस दृश्य की भी तस्वीरें खींची। यह सब कुछ दिनाजपुर जिले में घट रहा था। मैंने वहां कई परिवारों को देखा, उनमें से कुछ के साथ ऐसे छोटे–छोटे बच्चे थे जिनका अभी–अभी पाकिस्तान से भारत आते वक्त रास्ते में जन्म हुआ था, कुछ का जन्म पलायन की शुरुआत के पहले दिन हुआ था और कुछ का जन्म सड़क किनारे पेड़ों के नीचे हुआ था। इन महिलाओं और नवजात शिशुओं का पलायन जाहिर तौर पर भयावह था। एक जगह मैंने अवरनाल (आफ्टर बर्थ) भी देखा तो दूसरी तरफ महिलाओं के लिए कामचलाऊ तंबू लगाया जा रहा था। दक्षिण की ओर, कोलकाता के पास बोनगांव में हम ऐसे कई लोगों से मिले जिनका कोई भी परिजन जिंदा नहीं बचा था। एक महिला गोद में एक बच्चे को लिए थी और उसने बताया कि उसके अन्य पांच बच्चों को मार दिया गया। उसका पति भी उसके साथ नहीं था। एक अन्य युवक ने कहा कि वह भैंस खरीदने के लिए बाहर गया था। जब वह वापस अपने गांव लौटा, तो पाया कि वहां कुछ भी नहीं बचा था, सब कुछ तबाह कर दिया गया था और उसे अपने परिवार का कुछ अता–पता नहीं था।" (38)

पादरी जॉन हास्टिंग्स का वर्णन जारी रहा, "बशीरहाट अस्पताल में एक महिला थी जिसका पैर गोली लगने से हुए घाव के कारण काट दिया गया था। उसके साथ तीन बच्चे थे, सभी गोली लगने से घायल थे। सभी को पट्टियां बांधी गई थीं और उस महिला ने कहा कि उसके पति को भी गोली लगी थी। मेरे ख्याल से वह लोगों के एक विशाल समूह के साथ थी, जो खुलना से आ रहे थे और हकीमपुर पार करके पश्चिम बंगाल में प्रवेश कर गए थे। रास्ते में जलदंगा नामक स्थान पर पाकिस्तानी सैनिकों ने उन्हें घेर लिया था। यह स्पष्ट था कि गांव

वालों की मदद से यह सब कुछ किया गया था, उन्होंने पाकिस्तानी सेना को सूचना पहुंचाई थी। सेना ने उन पर मशीन गन से गोलियां चलाईं। उन्होंने कहा कि उनमें से करीब 400 लोग मर गए, जब वे सुरक्षा की तलाश में भारत की ओर भाग रहे थे। पाकिस्तानी सेना ने भारतीय सीमा तक उनका पीछा किया और जब वे सीमा पार करने की कोशिश कर रहे थे, तो उन पर गोलियां भी चलाईं। एक दिन सेना नदी के तट पर आई और नाव से नदी पार कर भारत जाने की कोशिश कर रहीं लड़कियों को पकड़कर नाव से उतार दिया। कुछ महिलाओं और लड़कियों ने नदी को तैरकर पार करने की कोशिश की। उनमें से दो डूब कर मर गईं। मैंने नदी तैरकर पार करने वाली एक महिला से बात की।" (39)

ऐसे कई लोग थे जिन्होंने पाकिस्तानी सेना की असहाय लोगों पर की गई अमानवीय बर्बरता का वर्णन किया। रूपम किशोर बरुआ चटगांव विश्वविद्यालय में अर्थशास्त्र के छात्र थे। वह एक बौद्ध थे और 30 मई 1971 को त्रिपुरा आ गए थे। उन्होंने अपनी दर्दनाक दास्तां बयां की, "बैसाखी की आखिरी पूर्णिमा के दिन, स्थानीय लुटेरों और असामाजिक तत्वों के साथ मिलकर पाकिस्तानी सेना के जवान हमारे गांव महामुनि में घुस आए। पाकिस्तानी जवानों ने लोगों से उनकी घड़ियां, गहने, नकदी और सभी कीमती चीजें लूट ली और सरकारी अधिकारियों के नामों की सूची बनाकर उन पर हमला किया। उन्होंने गांव की कुछ महिलाओं के साथ वहीं पर बलात्कार किया और कुछ को अगवा कर अपने साथ ले गए। पिछले चुनावों में भारी शिकस्त का सामना करने वाले फजलुल कादिर चौधरी के बेटे के नेतृत्व में मुस्लिम लीग के सदस्यों ने इस लूट को अंजाम दिया था। उसके दो या तीन दिन बाद बौद्ध लोगों की आबादी वाले कई गांव भारत की ओर रुख करने लगे। लेकिन धैश्य बाबर खामर और रानीरहट नामक स्थानों पर पाकिस्तानी सैनिकों ने उन पर धावा बोल दिया और कुछ को गोली से मार दिया। लुटेरों ने उनकी सारी संपत्ति लूट ली। ...भारी जोखिम उठाते हुए मैं चटगांव लौटा, लेकिन वहां मैंने पाया कि हजारी गोली, नबारगृह बारी, आवामी लीग कार्यालय और आवामी लीग के सदस्यों के घर पहले ही जला दिए गए थे। चटगांव–ढाका जी.टी. रोड के दोनों किनारों पर स्थित सभी घरों और दुकानों को जलाकर खाक कर दिया गया और मिर्शाराय एवं सीताकुंड स्थित तमाम गांवों को पूरी तरह से जला दिया गया था।" (40)

पाकिस्तान की क्रूरता और अत्याचारों को पश्चिमी, भारतीय और सोवियत संघ की मीडिया के अलावा ज्यादातर मुस्लिम देशों की मीडिया ने भी दिखाया। ट्यूनीशिया के एक दैनिक–पत्र 'ला प्रेस' ने 29 अगस्त 1971 को बांग्लादेशियों पर हो रही क्रूरता के बारे में लिखा, "तीन सौ लोग खुदकुशी करने की ओर ...जिनके साथ पठान, पंजाबी, बलूच और अन्य पश्चिम पाकिस्तान यूनिट के सैनिकों ने चार महीने तक बलात्कार किया। इन्हें सेना की पलटनों के लिए वेश्यावृत्ति में लगाया गया। ये सभी पीड़िताएं गर्भवती हो गईं, इस वजह से एक पश्चिमी पाकिस्तानी अधिकारी ने कहा कि 'इनका अब कोई काम नहीं' है और इन्हें रिहा कर दिया जाए।"

ऐसी कई रिपोर्ट थीं जिनमें लड़कियों को सेक्स–गुलामी के लिए उनके घर से जबरन अगवा करने की बातें होती थीं, लेकिन ऐसी कुछ ही घटनाओं को प्रकाशित किया गया। वाशिंगटन के दैनिक इवनिंग स्टार ने 14 अक्टूबर 1971 को 'डेस्पेयर इन ईस्ट पाकिस्तान' शीर्षक से एक खबर प्रकाशित की। "सैन्य निगरानी से बचने के लिए आयोजित की गई एक गुप्त मुलाकात में एक बंगाली किसान ने अखबार के संवाददाता से एक अनुभव साझा किया। डरे और सहमे उसने बताया, '...11 अप्रैल की रात को सेना गांव में आई। उसकी एक टुकड़ी मुझे धोखे से मेरे

घर से ले गई और जब मैं वापस लौटा तो मेरी बहन लापता थी। साथ ही मेरे एक पड़ोसी की बेटी और एक हिन्दू लड़की भी लापता थीं। मई के मध्य में उन्होंने मेरी बहन और पड़ोसी लड़की को रिहा कर दिया लेकिन उस हिन्दू लड़की का अब भी कुछ पता नहीं था। वापस लौटी दोनों लड़कियां अब गर्भवती हैं और बच्चों को जन्म देने वाली हैं। जहां उन्हें रखा गया था, वहां करीब 200–300 लड़कियों को बंदी बनाकर रखा गया। वहां उनसे कपड़े धुलवाए जाते थे और पाकिस्तानी सैनिक जबरन दिन में दो से तीन बार उनके साथ सेक्स करते थे। मेरी बहन को नहीं पता था कि उसे कहां रखा गया था।' विदेशियों सहित ढाका के कई निवासी बताते हैं कि उन्होंने सैनिकों द्वारा युवतियों को बिना किसी पूछताछ के अगवा करते हुए देखा है।"

टाइम्स पत्रिका ने अक्टूबर 1971 में सेक्स–गुलामी के काफी मामलों की पुष्टि की। "...एक बेहद ही खौफनाक खुलासे में पता चला कि 563 बंगाली युवतियों को हिंसा के पहले दिन से ही ढाका में सेना की छावनी में बंधक बनाकर रखा गया। ये सभी युवतियां तीन से पांच महीने की गर्भवती हैं। इन्हें ढाका विश्वविद्यालय और उनके घरों से अगवा किया गया था। सेना ने युवतियों का गर्भपात कराने की व्यवस्था कर ली है। लेकिन ढाका की छावनी में बंधक बनाकर रखी गई युवतियों का अब गर्भपात संभव नहीं है। सेना ने धीरे–धीरे ऐसी युवतियों को गर्भावस्था में ही रिहा करना शुरू कर दिया है।"

अंतर्राष्ट्रीय जानकारों का मानना है कि पाकिस्तानी सेना ने बांग्ला भाषी मुसलमानों और हिन्दुओं को डराने के लिए युद्ध में 'बलात्कार' को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। पाकिस्तानी सैनिकों की इस घिनौनी करतूत से हजारों महिलाएं गर्भवती हुईं, कई अवांछित "युद्ध शिशुओं" का जन्म हुआ, गर्भपात व भ्रूण हत्याएं हुईं। इसके अलावा पीड़िताओं को उनके परिवार और समाज ने बहिष्कृत तक कर दिया। इतिहास में किसी भी युद्ध के दौरान इतने अधिक बलात्कार नहीं हुए जितने कि पाकिस्तानी सेना ने 1971 के युद्ध में किए।

फोटो–10

बांग्लादेशी राजनैतिक वैज्ञानिक, नारीवादी नेता और लेखक रौनक जहां के अनुसार, इतने व्यापक स्तर पर किए गए बलात्कार बांग्लादेशियों के प्रति पाकिस्तानियों की नस्लीय घृणा को दर्शाते हैं। एक अन्य राजनैतिक वैज्ञानिक आर.जे. रुमेल अपनी किताब 'डेथ बाय गवर्नमेंट : जेनोसाइड एंड मास मर्डर' में लिखते हैं कि पाकिस्तानी सेना की नजर में बंगाली मुसलमान अवमानवीय और हिन्दू गिरे हुए और कीड़े–मकोड़े जैसे लोग थे, जिन्हें वह नष्ट कर देना चाहती है। यह बिल्कुल "नाजियों का यहूदियों के प्रति व्यवहार" जैसा था। सेना का मानना था कि बंगाली लोग हीन हैं और उनके वंश को सुधारने के लिए जबरन महिलाओं को गर्भवती करना चाहिए।

स्पेनिश प्रोफेसर बेलेन मार्टिन लुकास ने बलात्कारों को जातीय रूप से प्रेरित बताया। लेफ्टिनेंट जनरल नियाजी के 11 अप्रैल 1971 को पद संभालने से पहले 'ऑपरेशन सर्चलाइट'

के प्रणे ता, टिक्का खान पाकिस्तानी पूर्वी कमांड के गवर्नर और जनरल ऑफिसर कमांडिंग–इन–चीफ थे। जब उन्हें एक संवाददाता ने याद दिलाया कि वे पाकिस्तान के बहुसंख्यक प्रांत के प्रभारी हैं, तो वे चुटकी लेते हुए बोले, "मैं इस बहुसंख्यक को अल्पसंख्यक में बदल दूंगा।" भारतीय लेखक मुल्क राज आनंद के अनुसार, "ये बलात्कार इतने सुनियोजित और व्यापक थे कि ऐसा लगता था कि जैसे ये सेना की नीति में शामिल हों। पश्चिमी पाकिस्तान ने एक नई नस्ल पैदा करने और बंगाली राष्ट्रवाद को दबाने के लिए ऐसी घिनौनी करतूत को अंजाम दिया।" उनके इस आंकलन की भारतीय पत्रकार अमिता मलिक ने पुष्टि करते हुए कहा कि 16 दिसम्बर 1971 को जब पाकिस्तानी सेना ने आत्मसमर्पण किया तो उसके एक सैनिक ने कहा, "हम तो जा रहे हैं लेकिन अपने वंश यहीं छोड़कर जा रहे हैं।"

महिलाओं के साथ बलात्कार का उद्देश्य बांग्लादेशियों को अपमानित करना था। इसीलिए कई विवाहित महिलाओं के साथ उनके पतियों के सामने और अविवाहित पीड़िताओं के साथ उनके परिवारों के सामने बलात्कार किए गए। कुछ अवसरों पर बलात्कार करने के बाद पाकिस्तानी सैनिक पीड़िताओं के गुप्तांगों को काट देते थे और उनमें से कुछ की हत्या कर देते थे। मुस्लिम लीग, निजाम–ए–इस्लाम, जमात–ए–इस्लाम और जमीयत–उल–पाकिस्तान जैसे पाकिस्तान के हिमायती कट्टरपंथी दलों ने इन जघन्य अपराधों में पाकिस्तानी सेना का समर्थन किया। भारत–पाकिस्तान युद्ध के दौरान 3 से 16 दिसम्बर के बीच ऐसी अनेक पीड़िताओं को भारतीय सेना ने रिहा करा लिया। 1972 में बांग्लादेश सरकार ने बलात्कार पीड़िताओं के लिए पुनर्वास कार्यक्रम की शुरुआत की। ढाका के साथ–साथ अन्य शहरों में महिला पुनर्वास शिविरों को स्थापित किया गया। पीड़िताओं को ऐसे केन्द्रों में भेजा गया, जहां उनका गर्भपात और संभव हो तो प्रसव भी किया जाता था।

इन केन्द्रों को स्थापित करने में कई अंतर्राष्ट्रीय परोपकारी संगठनों ने अपना योगदान दिया। इंटरनेशनल प्लांड पैरेंटहुड फेडरेशन एक ऐसा ही गैर–सरकारी संगठन था, जिसने 197 2 में ऑस्ट्रेलियाई चिकित्सक डॉ. ज्यॉफ्री डेविस को बांग्लादेश बुलाया। डेविस ने अनुमान लगाया कि असल में महिलाओं के साथ बलात्कार के मामले बताए गए आंकड़ों से कहीं ज्यादा हैं। उन्होंने पीड़िताओं द्वारा खुदकुशी और भ्रूण हत्याओं के कई मामलों के बारे में सुना। अपने काम के दौरान उन्होंने पाया कि पांच सौ से अधिक पीड़िताओं ने अपना गर्भपात कराया। ऐसी पीड़िताओं में प्रसूति से जुड़ी कई जटिलताएं पैदा हो गई थीं। पुनर्वास केंद्र के एक डॉक्टर ने बताया कि 1,70,000 महिलाओं के गर्भपात किए गए और युद्ध के दौरान अवांछित 30,000 बच्चों का जन्म हुआ। वहीं डेविस के अनुसार, सरकार द्वारा प्रायोजित गर्भपात से पहले, 1,50,000 से 1,70,000 गर्भपात किए जा चुके थे। बांग्लादेश सरकार के अनुमान के अनुसार युद्ध के दौरान 30,000 बच्चों का जन्म हुआ, जबकि सेंटर फॉर रिप्रोडक्टिव लॉ एंड पॉलिसी की रिपोर्ट में यह आंकड़ा 2,50,000 बताया गया। एक ऑस्ट्रलियाई डॉक्टर ने न्यूयॉर्क टाइम्स को बताया कि ज्यादातर बलात्कार पीड़िताएं पाकिस्तानी सैनिकों के गुप्त रोगों से संक्रमित हो गई थीं। (41)

पीड़िताओं को सेना के शिविरों में बंद कर दिया जाता था जहां उनके साथ पाकिस्तानी सैनिक हर रात सामूहिक बलात्कार करते थे। खूबसूरत लड़कियों को अधिकारियों को सौंप दिया जाता था। वे भाग्यशाली थी कि उनके साथ सामूहिक बलात्कार नहीं हुआ क्योंकि उन्हें केवल

एक अधिकारी की वासना को शांत करना पड़ता था। अधिकारियों की सेक्स गुलाम इसलिए भी थोड़ी बेहतर थीं क्योंकि उन्हें अच्छी तरह से खिलाया–पिलाया जाता था और उनका अच्छा ख्याल भी रखा जाता था। पीड़िताओं को साड़ी जैसे पारंपरिक परिधान पहनने की मनाही थी क्योंकि उनमें से कुछ ने इनसे लटककर खुदकुशी कर ली थी। वे भाग न पाएं, इसीलिए उनको केवल शरीर ढकने के लिए कम–से–कम कपडे दिए जाते थे। कुछ शिविरों में तो उन्हें बिल्कुल नग्न रखा जाता था। महिला स्टाफ उन्हें खाना देती थी। उनका संपर्क बाहरी दुनिया से पूरी तरह से कट गया था। उन्हें पता ही नहीं चलता कि उनके अपने देश में क्या हो रहा है। ये पीड़िताएं न केवल शारीरिक बल्कि भावनात्मक और मनोवैज्ञानिक रूप से भी टूट चुकी थीं। अंजान व्यक्तियों द्वारा लगातार की गई प्रताड़ना से उनकी मानसिक स्थिति पर गहरा प्रभाव पड़ा। (42)

मैं (ब्रिगेडियर आर.पी. सिंह) दिसम्बर 1971 और जनवरी 1972 में युद्ध के दौरान और तुरंत बाद कुछ बीरांगनाओं (बंगाली महिलाएं जिन्होंने पाकिस्तानी सेना की क्रूरता सही) से मिला। उस समय वे मानसिक रूप से पूरी तरह से अस्थिर नजर आ रही थीं। मई–जून 1971 में प्रवासी शिविरों के प्रबंधन के दौरान मैंने पश्चिम बंगाल के अधिकतर शरणार्थी शिविरों का दौरा किया। वहां मैंने केवल चौदह या पन्द्रह साल की पीड़िताएं भी देखीं। वे सभी हक्की–बक्की लग रही थीं। उनमें से कुछ के गुप्तांगों को बलात्कार के बाद काट दिया गया था। ऐसी पीड़िताएं दर्द से कराह रही थीं। पाकिस्तानी सैनिकों की यह करतूत यौन विकृति का सबसे बदतर रूप थी। क्या एक पुरुष किसी दूसरे मानव के प्रति इतना निर्दयी, अमानवीय और क्रूर हो सकता है? क्या पाकिस्तानी सैनिकों में जरा भी सहानुभूति नहीं बची थी? मुझे आज तक इस बात पर हैरानी होती है। दिसम्बर 2011 में आजादी की 40वीं वर्षगांठ के अवसर पर जब मैं बांग्लादेश गया तो मैंने पाया कि बीरांगनाओं की पीड़ा आजाद बांग्लादेश में और अधिक बढ़ गई थी। बांग्लादेश तो 16 दिसम्बर 1971 को आजाद हो गया लेकिन इन बीरांगनाओं को इसके बाद भी समाज और उनके अपने परिवारों से घोर अपमान का सामना करना पड़ा। अपने ही देश में उन्हें बहिष्कृत किया गया। इनमें से कुछ बहादुर महिलाओं ने अपनी दर्दनाक आपबीती दुनिया को बताई। उन्हीं महिलाओं में से एक प्रियभाषिणी फिरदौसी से एक जाने–माने समाजसेवी ने विवाह कर लिया। प्रियभाषिणी को उनके पहले पति ने 1971 के आजादी युद्ध के बाद छोड़ दिया था। वह खुद बांग्लादेश की प्रख्यात रचयिता थी। उनका साक्षात्कार यूट्यूब पर मौजूद है।

बीना डी'कोस्टा, सेंटर फॉर इंटरनेशनल गवर्नेंस एंड जस्टिस और रेगुलेटरी इंस्टीट्यूशंस नेटवर्क में शोधकर्ता, और ऑस्ट्रेलियन नेशनल यूनिवर्सिटी में सिक्योरिटी एनालिसिस प्रोग्राम की संयोजक हैं। उन्होंने बांग्लादेश की बलात्कार पीड़िताओं पर गहन शोध किया है। कुछ समय पहले एक बांग्लादेशी प्रकाशन में छपे डॉ. डेविस से बातचीत के अंश पीड़िताओं की दर्दनाक यातना को बयां करती हैं। जब डेविस से पूछा गया कि पाकिस्तानी सेना ने जो 2,00,000 से 4,00,000 महिलाओं के साथ बलात्कार करने का आंकड़ा बताया है, क्या वो सही है? इस पर उन्होंने बताया कि यह आंकड़ा वास्तविकता से बहुत कम है। डेविस के अनुसार, "..शायद ये आंकड़े वास्तविक आंकड़ों से बहुत कम हैं। किस तरह से उन्होंने कस्बों–शहरों पर कब्जा किया, उसका वर्णन काफी विचित्र था। वे अपनी पैदल सेना को पीछे और तोपों को आगे रखते थे। फिर वे अस्पतालों और स्कूलों को घेर लेते थे, जिससे शहर में उथल–पुथल

Photo Courtesy
commemor

हो जाती थी। फिर बटालियन अन्दर जाकर सभी महिलाओं को पकड़कर लाती थी और उन्हें सैनिकों को सौंप दिया जाता था... कुछ की आपबीती तो बहुत ही भयावह थी। उनके साथ बार–बार बलात्कार किया गया... उनमें से काफी महिलाएं तो उन बलात्कार शिविरों में ही मर गईं। ये पूरी घटना इतनी निर्मम और भयावह थी कि किसी को इस पर यकीन तक नहीं हो पाता। लेकिन ऐसा हुआ, यह बात जगजाहिर थी।"

बांग्लादेश के राष्ट्रपिता कहे जाने वाले शेख मुजीबुर रहमान ने इन पीड़िताओं को पुनः समाज का हिस्सा बनाने के लिए 'बीरांगना' (बंगाली में युद्ध नायिका) का नाम दिया था। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। पाकिस्तानी सैनिकों की बर्बरता के बाद इन्हें समाज ने पूरी तरह से बहिष्कृत कर दिया। कुछ पीड़िताओं को उनके ही पतियों ने मार दिया, तो कुछ ने खुदकुशी कर ली और अपने बच्चों की खुद ही जान ले ली। इस घटना के बाद कुछ महिलाएं अपने घर जाने से इतनी डर गई थीं कि वे उन्हें बंधक बनाने वाले पाकिस्तानी सैनिकों से ही विनती करने लगी कि वे उन्हें अपने साथ पाकिस्तान ले जाएं। (43)

महिलाओं के साथ बलात्कार करने और उन्हें वेश्यावृत्ति के लिए मजबूर करने जैसी घिनौनी करतूत के लिए पाकिस्तानी सैनिकों को उनके उच्चस्तरीय पदाधिकारियों से पनाह मिली हुई थी। याह्या खान समेत अन्य पाकिस्तानी वरिष्ठ अधिकारी रावलपिंडी में अय्याशी में लगे हुए थे। बांग्लादेश में मौजूद सेना के निचले स्तर के पदाधिकारी भी अपने बड़े अफसरों के बेहूदा नक्शे–कदम पर चल रहे थे। यूनिट के कमांडर अपने अधिकारियों के लिए खूबसूरत लड़कियों का चुनाव करते थे। एक पश्चिमी दैनिक अखबार के संवाददाता ने जनरल नियाजी से बांग्लादेश में उसके सैनिकों द्वारा महिलाओं पर किए गए अत्याचारों के बारे में पूछा तो उसने उनके बचाव में यह बेहूदा तर्क दिया कि चूंकि उसके सैनिक बांग्लादेश में लड़ रहे हैं, लिहाजा वे सेक्स के लिए पश्चिमी पाकिस्तान तो जा नहीं सकते। (44)

इन जघन्य अपराधों में पाकिस्तान के कट्टरपंथी दल भी पाकिस्तानी सेना का साथ दे रहे थे। 3 से 16 दिसम्बर के बीच युद्ध के दौरान कई पीड़िताओं को भारतीय सेना और मुक्ति बाहिनी ने रिहा कराया था। बीरांगनाओं के पलायन पर कई किताबें लिखी गईं। मैंने (ब्रिगेडियर आर पी सिंह) कुछ किताबें पढ़ी हैं। डॉ. नीलिमा इब्राहिम की लिखी गई किताब "आमि बीरानगोना बोलचि" से उनकी यातनाओं का पता चलता है। इसके बावजूद ऐसी ही हजारों बीरांगनाओं की आवाज को किसी ने नहीं सुना। वे खामोशी से सब कुछ सहती रहीं। आजादी के लिए संघर्ष में उनका बलिदान आजादी के लिए लड़ने वाले मुक्ति बाहिनी के युवा लड़ाकों से कम नहीं था। बावजूद इसके सम्मान तो दूर की बात, इसके बदले उन्हें उदासी और अपमान सहना पड़ा।

तारा बनर्जी के पिता एक हिन्दू डॉक्टर थे, जो मार्च 1971 तक निजी प्रैक्टिस कर रहे थे। 27 मार्च 1971 की शाम में एक जीप आई। उसमें शहर की नागरिक समिति के अध्यक्ष के साथ अन्य लोग भी सवार थे। तारा उन्हें अच्छी तरह से जानती थी और उन्हें चाचा (अंकल) कहती थी। लेकिन उसने तारा की एक न सुनी और उसे जबरन अगवा कर पुलिस स्टेशन ले जाया गया। कई पाकिस्तानी सैनिकों ने आठ महीने तक उसके साथ बार–बार बलात्कार किया। दिसम्बर 1971 में भारतीय सेना ने तारा को रिहा करा लिया। महिलाओं के पुनर्वास केंद्र में उससे मिलने उसके पिता और भाई आए। तारा ने सोचा कि अब वो घर जा पाएगी लेकिन

उसके अपने परिजनों ने ही उसे ठुकरा दिया। जिससे वह बहुत निराश हो गई। वहां काम कर रहे एक गैर–सरकारी संगठन ने तारा की मदद की और उसे नर्सिंग के पाठ्यक्रम में दाखिल करा दिया। आगे के प्रशिक्षण के लिए तारा को बाद में बुल्गारिया की राजधानी सोफिया भेज दिया गया जहां उसकी दोस्ती एक डच सहपाठी से हो गई। उसने तारा को छुट्टियों में नीदरलैंड आने का आमंत्रण दिया।

वहां के लोग तारा के प्रति काफी स्नेही थे। बांग्लादेश में काम कर चुके एक डच पत्रकार को उससे प्यार हो गया और उसने तारा को शादी करने का प्रस्ताव दिया। तारा हमेशा से ऐसे ही प्यार और लगाव की तलाश कर रही थी। तारा ने शादी के लिए हां कर दी लेकिन आज भी वह अपनी मातृभूमि और परिवार को याद करती है। 1984 में उसने कोलकाता का दौरा किया जहां वह अपनी बहन से मिली। साथ ही वह राजशाही में अपने घर भी गई, जहां उसकी मां ने तुरंत तारा से पूछा कि क्या उसने अपने पति को अपने अतीत के बारे में बताया है या नहीं। तारा ने अपनी मां को बताया कि उसके पति के अलावा सास–ससुर को भी उसके अतीत के बारे में सब पता है। तारा ने बताया कि यूरोपीय लोग इस मामले में उसके अपने लोगों से बेहतर थे। उन्हें उसके अतीत से कोई दिक्कत नहीं हुई और उन्होंने तारा को खुशी–खुशी अपना लिया। वह नीदरलैंड में खुशी से रह रही थी। (45) लेकिन सभी बीरांगनाएं तारा की तरह खुशकिस्मत नहीं थीं।

मेहरजान एक दरजी की बेटी थी जो ढाका के एक छोटे से उपनगर में रहती थी। मार्च 1971 में एक दिन पाकिस्तानी सेना की जीप उसके घर के बाहर रुकी। सेना के साथ कुछ बंगाली लोग भी थे। उन्होंने कहा, "साहब, ये मेहरजान का घर है... वो बहुत खूबसूरत है।" उस समय उसके पिता और बड़ा भाई घर में नहीं थे। उसकी मां उसे बेडरूम के अन्दर ले गई और उसने अन्दर से दरवाजा बंद कर दिया। लेकिन पाकिस्तानी सैनिकों ने दरवाजे को तोड़ दिया और मेहरजान की मां और छोटे भाई को गोली मार दी। वे जबरन उसे अगवा कर ले गए। सेना के शिविर में उसके साथ हर रात तीन से चार सैनिक सामूहिक बलात्कार करते थे। आठ महीने तक उसने पाकिस्तानी सेना की इस क्रूरता को सहा। उसी की तरह वहां पर अन्य लडकियों को भी बंधक बनाकर रखा गया था। उन्हें पहनने के लिए केवल लुंगी और टी–शर्ट दी जाती थी। खाने में उन्हें दाल–रोटी जैसा शाकाहारी भोजन ही परोसा जाता था। उन सभी का बाहरी दुनिया से कोई संपर्क नहीं था।

उन्हें पता ही नहीं था कि देश में उनके आस–पास क्या हो रहा था। उनके परिवार की कोई जानकारी उन्हें नहीं दी गई। हर रात की यातना के बाद वे दर्द से कराहती थीं। फिर एक दिन मेहरजान को पहनने के लिए साडी दी गई क्योंकि उन्हें दूसरे शिविर में ले जाया जा रहा था। पाकिस्तानी सैनिकों ने सभी को चेतावनी दी थी कि कोई भी भागने की कोशिश न करे। वहां भी उनकी पीड़ा कम नहीं हुई। शिविर का इंचार्ज एक बूढ़ा पठान हवलदार लायक खान था। वह मेहरजान के प्रति काफी सहानुभूति रखता था। एक दिन वह बड़ा ही उदास था। जब मेहरजान ने उसका कारण पूछा तो उसने बताया कि पाकिस्तान युद्ध हार गया है और या तो वो मुक्ति बाहिनी के हाथों मारा जाएगा या फिर भारतीय सेना उसे बंदी बना लेगी। उसने आशंका जताई कि उसे मारकर बांग्लादेश में दफना दिया जाएगा, जबकि मेहरजान आजाद होकर अपने घर लौट जाएगी और एक नई जिन्दगी शुरू कर पाएगी। मेहरजान को पता था

कि केवल लायक खान ही एकमात्र व्यक्ति था जो थोड़ी–बहुत सहानुभूति रखता था। उसने लायक खान को बड़े ही प्यार से बताया कि वो उससे शादी करके उसकी जान बचाएगी। यह सुनकर लायक खान शुरू में हिचकिचाया लेकिन मेहरजान अपने फैसले पर अड़िग थी। उसी शाम एक मौलवी को बुलाया गया और दोनों का निकाह करा दिया गया।

भारतीय सेना ने मेहरजान और अन्य बंधकों को रिहा करा लिया और उन्हें उनके घर भेजने का फैसला किया। लेकिन मेहरजान ने अपने घर जाने से मना कर दिया। फिर उसे लायक खान के साथ ढाका छावनी में रहने के लिए भेज दिया गया। बाद में उसे महिला पुनर्वास केंद्र में भेज दिया गया। भारतीय सेना ने उसके परिवारजनों को सूचित किया। वहां उसके पिता उससे मिलने आए। दोनों एक दूसरे से गले लगकर रोने लगे। इसके बावजूद उसके पिता ने मेहरजान को घर ले जाने से इनकार कर दिया। वहां उसने देखा कि बाकी पीड़िताओं के परिवारजन भी उन्हें घर नहीं ले जा रहे थे। भारत ने जब युद्ध के बंदियों को स्वदेश भेजा तो मेहरजान लायक खान के साथ पश्चिम पाकिस्तान चली गई। (46)

रीना भी एक ऐसी ही लड़की थी जिसे सेक्स गुलाम बनाकर रखा गया था। उसके पिता पाकिस्तान सरकार में ऊंचे पदाधिकारी और भाई पाकिस्तानी सेना में अफसर था। वह ढाका विश्वविद्यालय में स्कॉलरशिप पर पढ़ रही थी। मार्च 1971 में कुछ पाकिस्तानी सैनिकों ने उनके घर का दरवाजा खटखटाया। उसके पिता ने दरवाजा खोला और उनका स्वागत किया। सेना ने जब रीना के पिता से उसके भाई के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि वो कोमिल्ला (शहर का नाम) में है। इसके बाद सैनिकों ने उसके माता–पिता को गोली मार दी और वे रीना को अगवा कर ले गए। उसे एक कर्नल को सौंप दिया। उसने उसके साथ हर रात बलात्कार किया। वह अभी संभली भी नहीं थी कि कर्नल की जगह एक ब्रिगेडियर ने ले ली। रीना के साथ हर रात सामूहिक बलात्कार किया गया। दिसम्बर 1971 में भारतीय सेना ने उसे रिहा करा लिया और महिला पुनर्वास केंद्र में भेज दिया। रीना भाग्यशाली थी कि उसका एक परिजन जो विदेश में रहता था, वो उसे अपने साथ ले गया और वहां उसकी शादी करा दी। वहां रीना खुश थी लेकिन साथ ही इस बात से दुखी भी थी कि उस जैसी कई बीरांगनाओं को अपने ही देश में वो सम्मान नहीं मिला जिसकी वे हकदार थीं। (47)

ऐसी हजारों–लाखों बीरांगनाएं हैं जिन्होंने ऑपरेशन सर्चलाइट के दौरान पाकिस्तानी सैनिकों की बर्बरता को सहा। वे सभी देश की आजादी के बाद अपने–अपने घर जाने के बारे में सोचती थीं। लेकिन आजादी के बाद तो उनकी मुश्किलें और बढ़ गईं जब उनके परिजनों ने उन्हें अपनाने से मना कर दिया। 16 दिसम्बर 1971 को बांग्लादेश तो आजाद हो गया लेकिन इन बीरांगनाओं की आत्मा हमेशा के लिए कैद हो गई। आजादी के तुरंत बाद बांग्लादेश कैथोलिक चर्च अथॉरिटी, मुख्य पादरी थिओडोसियस अमाल गांगुली, ढाका के सार्वजनिक सेवा केंद्र (सीएससी), पादरी माइकल ए. डी'रोजारिओ और खुलना के सीएससी ने मदर टेरेसा को बांग्लादेश में कार्य करने का आमंत्रण दिया।

मदर टेरेसा ने सबसे पहले खुलना में एक केंद्र की शुरुआत की। 1972 की शुरुआत में मदर टेरेसा और उनकी सहयोगी (सिस्टर्स) ढाका आ गई और वहां एमपुटी नामक स्थान पर काम करना शुरू कर दिया। उन्होंने उस केंद्र का नाम "शिशु भवन" (बच्चों के लिए घर) रखा। इस केंद्र में परोपकारी मिशनरीज ने काफी गर्भवती बीरांगनाओं को पनाह दी। कुछ बीरांगनाएं शर्म

के मारे समाज के सामने नहीं आना चाहती थीं, लेकिन उन्होंने अपने नवजात "युद्ध शिशुओं" को वहीं छोड़ दिया। मदर टेरेसा और उनकी सहयोगियों की मदद से इन युद्ध शिशुओं को यूरोप, उत्तर अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और अन्य देशों के परिवारों ने गोद ले लिया। (48)

4 दिसम्बर 2014 को ढाका के अंग्रेजी अखबार डेली स्टार में "विक्ट्रीज साइलेंस" नामक एक आलेख में बीना डी'कोस्टा ने 'युद्ध शिशुओं' और गर्भवती महिलाओं के गर्भपात जैसी बांग्लादेश की त्रासदी का विवरण दिया है। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं. उन्होंने लिखा, "16 दिसम्बर 1971—आज विजय दिवस के रूप में मनाया जाता है। एक नए देश के नागरिकों के लिए यह अविस्मरणीय दिन है लेकिन कई यादें विचलित करने वाली हैं, खासकर कि 'युद्ध शिशुओं' की। बांग्लादेश के इतिहास के पन्नों में इन शिशुओं का कोई जिक्र नहीं है। कुछ संशयवादियों ने युद्ध के दौरान पाकिस्तानी सेना के हाथों मारे जाने वाले लोगों और बलात्कार पीड़ित महिलाओं की संख्या पर आपत्ति जताई है। महिलाओं के साथ बलात्कार पाकिस्तानी सेना की सोची—समझी रणनीति थी, इसका पता 22 मार्च 2002 को डॉन अखबार में छपे एक लेख में याह्या खान के बयान से चलता है। राष्ट्रपति के तौर पर याह्या खान ने 1971 में पूर्वी पाकिस्तान पर सैन्य कार्रवाई का सीधा आदेश दिया था। ऑपरेशन सर्चलाइट के लॉन्च से पहले दक्षिण—पश्चिमी बांग्लादेश के जेस्सोर में कुछ पत्रकारों को संबोधित करते हुए उन्होंने हवाई अड्डे के किनारे खड़े बंगालियों के एक समूह की ओर इशारा किया। लेख के अनुसार, उन्होंने उर्दू में कहा, "पहले इनको मुसलमान करो"। इस उपाख्यान का महत्व इसलिए भी है क्योंकि इससे पता चलता है कि पाकिस्तानी सेना के वरिष्ठतम अधिकारियों में यह अवधारणा थी कि बंगाली लोग पाकिस्तान के देशभक्त नहीं हैं और वे भारतीय हिन्दुओं के ज्यादा करीब हैं। इस्लामाबाद में मौजूद नेतृत्व दल हमेशा से ही बंगालियों को सिर्फ कमजोर और लाचार ही नहीं बल्कि हिन्दुआनि (हिन्दू धार्मिक एवं सांस्कृतिक क्रियाकलाप) समझता था। उसका मानना था कि बंगालियों के इस हिन्दूपन को शुद्ध करना होगा।" (49)

बीना डी'कोस्टा ने कहा, "सलमा सोभन, एक कार्यकर्ता और अध्ययनकर्ता, इस बात की पुष्टि करती है कि युद्ध की शुरुआत से ही पाकिस्तानी सेना ने इस अवसर को भुनाया। पूर्वी पाकिस्तान को 'सच्चे मुसलमानों' में बदलने के लिए महिलाओं को जबरन गर्भवती किया गया। याह्या खान के हुक्म का नौ महीने तक चले युद्ध के दौरान पूरी बर्बरता से पालन किया गया। एक अनुमान के मुताबिक पाकिस्तानी सैनिकों ने इस दौरान 2,00,000 महिलाओं के साथ बलात्कार किया। पाकिस्तानी सैनिकों ने महिलाओं के साथ उनके घरों, आसपास के क्षेत्रों और यहां तक कि 'बलात्कार शिविरों' (रेप कैंप) में यह घिनौनी हरकत की। महिलाओं के साथ बलात्कारों के वास्तविक आंकड़ों की कई सूचियाँ बनाई गईं, जिनके बारे में कई सामाजिक कार्यकर्ताओं ने लेखिका को बताया। इनमें से काफी दस्तावेजों को 1972 में युद्ध के बाद बनी सरकार ने जान—बूझकर जला दिया, और बाकी दस्तावेजों को 1978—80 और फिर 1985—86 के दौरान सेना द्वारा शासित पाकिस्तान समर्थित सरकारों ने नष्ट कर दिया। इतने व्यापक बलात्कारों के अन्य कारण भी थे। सेना ने जनता को खौफजदा करने, बागियों के बारे में जानकारी प्राप्त करने, सैनिकों का हौसला बढ़ाने और बांग्लादेश की तेजी से बढ़ती राष्ट्रीय अस्मिता को मिट्टी में मिलाने के लिए भी बलात्कार किए। इसके अलावा, पाकिस्तानी सेना की निजी सेना (जिसे रजाकार और अल—बदर कहा जाता है) ने हिन्दुओं को डराने और उनकी जमीन तथा संपत्ति को हड़पने के लिए बलात्कार को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया... युद्ध

के बाद पाकिस्तान ने नरसंहार और बलात्कार के आरोपों को मानने से इनकार कर दिया। हैरानी की बात तो यह रही कि उन दोषियों को बांग्लादेश सरकार भी गुनहगार साबित करने में नाकाम रही।

फोटो–11

Photo Co
no

युद्ध शिशुओं के आंकड़ों के बारे में बीना डी'कोस्टा लिखती हैं, "आधिकारिक दस्तावेजों के अनुसार युद्ध के परिणामस्वरूप जबरन प्रसव के कम से कम 25,000 मामले सामने आए। बांग्लादेशी नेताओं ने बलात्कार पीड़िताओं का ध्यान रखने की जिम्मेदारी सामाजिक कार्यकर्ताओं और चिकित्सकों को सौंपी। परिणामस्वरूप, इंटरनेशनल प्लांड पैरेंटहुड, द रेड क्रॉस और द कैथोलिक चर्च जैसे संगठन पुनर्वास कार्यों में शामिल हो गए। इस प्रकार दो गतिविधियां एक साथ शुरू हुईं : गर्भवती महिलाओं को गर्भपात की मंजूरी और युद्ध शिशुओं को गोद लेने के कार्यक्रम। प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ताओं और चिकित्सकों के साथ लेखिका के साक्षात्कार से पता चलता है कि तमाम कार्यकर्ता पीड़िताओं की दिल से मदद करना चाहते थे, लेकिन कई बार महिलाओं की मर्जी के विरुद्ध जाकर उनका गर्भपात या उन के बच्चों को गोद दे दिया जाता था। गर्भवती युवतियों के अनुरोध को नहीं माना गया और उन्हें सही निर्णय लेने के लिए अक्षम माना गया।" (50)

डी'कोस्टा आगे लिखती हैं, "युद्ध शिशुओं के मुद्दे से किस तरह निपटा जाए, इसे लेकर सरकारी महकमे तक में असमंजस था। बांग्लादेश के तत्कालीन प्रधानमंत्री शेख मुजीबुर रहमान ने बीरांगनाओं को अपनी "बेटियां" कहा था। साथ ही उन्होंने समाज और उनके परिवारों से उन्हें अपनाने की भी अपील की। हालांकि, उन्होंने बहुत ही असंवेदनशीलता से यह भी घोषणा कर दी कि "किसी भी बच्चे को, जिसमें पाकिस्तानी खून है, उसे बांग्लादेश में रहने की इजाजत नहीं दी जाएगी।" एक प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता और नारीवादी लेखिका नीलिमा इब्राहिम अपनी किताब आमि बीरानगोना बोलचि में शेख मुजीब से अपनी मुलाकात को याद करती हैं। जब उन्होंने प्रधानमंत्री से युद्ध शिशुओं की स्थिति के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा, "उन बच्चों को यहां से भेज दिया जाए जिनके पिता का कोई पता नहीं है। उनका पालन–पोषण सम्मानपूर्वक होना चाहिए। बाकी मैं नहीं चाहता कि ये गन्दा खून इस देश में रहे।" शायद ऐसे ही बयानों ने युद्ध शिशुओं को गोद लेने की नीति अपनाने को मजबूर किया। हालांकि, इसके अलावा राज्य द्वारा प्रायोजित कार्यक्रम, इंटरनेशनल प्लांड पैरेंटहुड और द इंटरनेशनल एबॉर्शन रिसर्च एंड ट्रेनिंग सेंटर जैसे संगठनों की मदद से स्थानीय चिकित्सालयों ने महिलाओं के गर्भपात कराने के लिए व्यवस्था की। बांग्लादेश सेंट्रल ऑर्गेनाईजेशन फॉर विमेंस रिहैबिलिटेशन के सहयोग से ढाका और आसपास के क्षेत्रों में अवांछित प्रसव को रोकने के लिए चिकित्सालयों को तैयार किया गया।"

युद्ध शिशुओं के गुप्त तरीके से गोद देने की जानकारी देते हुए बीना ने लिखा, "मदर टेरेसा ने महिलाओं से अपील की कि वे गर्भपात न करवाएं, बल्कि ऐसी परोपकारी संस्थाओं (मिशनरीज) से संपर्क करें जो युद्ध शिशुओं की देखभाल कर रही थीं। दिसम्बर 1971 में मदर टेरेसा और उनकी एक सहयोगी M (गुप्त पहचान) ने बांग्लादेश में उन शिविरों का दौरा किया, जहां महिलाओं के साथ बलात्कार किया जाता था। M एक साक्षात्कार में याद करती हैं कि मदर टेरेसा को वहां लड़कियां नहीं बल्कि उनके बाल, पेटीकोट और कुछ अन्य वस्तुएं मिली। उनके बाल इसलिए काट दिए गए थे क्योंकि पाकिस्तानी सेना को डर था कि कहीं वे लडकियां पंखे से लटककर खुदकुशी न कर लें, जैसा कुछ लडकियां कर चुकी थीं। मदर टेरेसा के आग्रह पर 21 जनवरी 1972 को M दोबारा बांग्लादेश गईं, जहां उन्होंने युद्ध शिशुओं के गोद लेने संबंधी प्रक्रिया को पूरा किया। उन युद्ध शिशुओं में से ज्यादातर को कनाडा और कुछ को फ्रांस और स्वीडन के परिवारों ने गोद लिया। 1972 में बांग्लादेश सरकार ने महिलाओं के पुनर्वास की परियोजनाओं को संस्थागत बनाने के लिए महिला पुनर्वास संगठन (विमेंस रिहैबिलिटेशन आर्गेनाईजेशन) की स्थापना की। इसमें राष्ट्रीय केन्द्रीय महिला पुनर्वास बोर्ड ने सरकार की युद्धोपरांत नीतियों का समन्वय किया। 1972 के बांग्लादेश एबनडंड चिल्ड्रन (विशेष प्रावधान) के आदेश के तहत, सरकार ने गोद लेने वाली विदेशी समितियों को बांग्लादेश से युद्ध शिशुओं को गोद लेने के लिए प्रोत्साहित किया। जिनेवा स्थित इंटरनेशनल सोशल सर्विस की अमेरिकी शाखा बांग्लादेश में युद्धोपरांत कार्य करने वाली पहली समिति थी। फैमिलीज फॉर चिल्ड्रेन और कुआन–यिन फाउंडेशन (दोनों कनाडा की), द होल्ट एडॉप्शन प्रोग्राम (अमेरिका) और टेरे देस होम्स (स्विट्जरलैंड) जैसी अन्य संस्थाएं भी बाद में इस कार्यक्रम में शामिल हो गईं।" (51)

डी'कोस्टा ने आगे लिखा, "एक साक्षात्कार में नीलिमा इब्राहिम ने कहा कि "शुरुआत में मौलवियों ने गोद लेने वाली नीतियों के खिलाफ विरोध जताया क्योंकि बच्चे ईसाई मुल्कों में भेजे जा रहे थे। लेकिन सिर्फ यही एकमात्र अड़चन नहीं थी। कई लडकियां रोने लगीं। वे अपने बच्चों को छोड़ना नहीं चाहती थीं... महिलाओं को सुलाने और उनसे बच्चों को लेने के लिए नशीले पदार्थों तक का प्रयोग करना पड़ता था।" इस मामले में महिलाएं लाचार थीं। सामाजिक कार्यकर्ता साफ तौर पर इन महिलाओं की मदद करना चाहती थीं लेकिन अंत में किसी ने उनकी एक न सुनी। ऐसा लगा कि शायद राष्ट्र की 'शुद्धता' को उन महिलाओं की भलाई के मुकाबले तरजीह दी गई। B (एक अन्य गुमनाम सामाजिक कार्यकर्ता) ने इस बात की पुष्टि करते हुए कहा कि युद्धोपरांत बांग्लादेश सरकार ने दो तरीके अपनाए, दोनों ही तरीके महिलाओं की अपेक्षाओं के प्रति असंवेदनशील थे। पहला था गर्भपात कार्यक्रम, और दूसरा था गोद लेने के कानून को लागू करना। हालांकि यह सिर्फ युद्धोपरांत की स्थिति से निपटने के लिए ही किया गया था। देश के कानून में बांग्लादेशी बच्चों को गोद लेने की मनाही है; बांग्लादेशी नागरिक दत्तक अभिभावक (फोस्टर पेरेंट्स) बन सकते हैं, लेकिन जटिल प्रक्रिया के बाद। अपने परिवार द्वारा अस्वीकृत करने की बात करते हुए B एक युवती का मामला याद करती है जिसने एक बच्चे को जन्म दिया था। B ने कहा, "प्रसव से पहले उसने कहा कि वह अपने बच्चे को गोद देना चाहती है, लेकिन जब प्रसव का समय आया तो उसने ऐसा करने से मना कर दिया और वह खूब रोई।" (52)

गोद लिए गए बच्चों के पलायन के बारे में बीना डी'कोस्टा ने लिखा, "ऐसे कुछ छुट–पुट किस्से हैं, जिनमें युद्ध के दौरान लड़ने वालों और पाकिस्तानी सेना द्वारा बलात्कारों तथा निर्मम हत्याओं का वर्णन है, लेकिन कहीं भी युद्ध शिशुओं की नियति का कोई जिक्र नहीं है। उनमें से ज्यादातर तो बांग्लादेश के आधिकारिक इतिहास से गायब हो चुके हैं। राज्य और समाज ने नैतिकता का ठेकेदार बनकर यह निर्णय लिया कि कौन देश में रुक सकता है और कौन नहीं। हालांकि कई सामाजिक कार्यकर्ता, परोपकारी संगठन और चिकित्सक युद्ध शिशुओं और उनकी माताओं के हित में कार्य कर रहे थे, लेकिन अपनी माताओं से अलग होने के कारण उन्हें मां की ममता से वंचित होना पड़ा। आज उन बच्चों के बारे में बहुत ही कम जानकारी है कि उनका पालन–पोषण कैसे हुआ, कैसे वे सामाजिक अस्मिता के बिना रहे और गोद लिए गए बच्चों का क्या हुआ।

हाल के वर्षों में, मानवीय समुदाय ने युद्ध के दौरान पाकिस्तानी सैनिकों के बलात्कारों से जन्मे बच्चों को मिलाने के लिए प्रवासियों और शरणार्थियों को शरण देने जैसे कार्यक्रमों के जरिये प्रयास किए हैं। लेखिका ने गोद लेने वाली संस्थाओं, बंगाली वेबसाइटों और अखबारों से युद्ध शिशुओं के बारे में जनता को अवगत करने की अपील की। लेकिन सिर्फ कुछ ही ने इसमें रूचि दिखाई। एक वेबसाइट की मालकिन ने एक ई–मेल में लिखा, 'मेरे पिता बहुत ही खराब बर्ताव करते हैं, उन्होंने अभी मुझे अपमानित किया.... चार साल पहले मैंने खुदकुशी करने की कोशिश की... मैं अक्सर सोचती हूं कि मैं यहां कनाडा में क्यों हूं, मुझे गोद लेने के तीन महीने बाद ही मेरे दत्तक माता–पिता ने एक–दूसरे को तलाक दे दिया... मुझे अपने बचपन से नफरत थी और मैं अपने देश बांग्लादेश से खफा हूं कि जब मुझे उसकी मदद की सबसे ज्यादा जरूरत थी तब उसने मुझे अनदेखा कर दिया। मेरी कोई जड़ें और मूलता नहीं है, इससे मेरी आंखें भर आती हैं। इसीलिए मैं अपनी जन्मभूमि के बारे में अधिक से अधिक जानने की कोशिश कर रही हूं...'

...ऐसा कोई तरीका नहीं है जिससे गोद लिए गए बच्चों के बारे में पता चल सके। लेकिन इसमें कोई शंका नहीं है कि उनके अतीत और जन्म से जुड़ी यातना ने लगभग सभी पर गहरी छाप छोड़ी। उनकी मर्जी के विरूद्ध जाकर उनके बारे में जानकारी जुटाना नैतिक रूप से सही नहीं है। इसके बजाय, यह समझना अधिक महत्वपूर्ण है कि कैसे लगभग साढ़े चार दशक पहले, पूरा राष्ट्र और समुदाय बांग्लादेशी महिलाओं और युद्ध शिशुओं की रक्षा करने के लिए एकजुट हो गया था। इसी समझ से 1971 युद्ध के दौरान हुए अपराधों के प्रतिकार और हर्जाने की मांग करने के लिए बांग्लादेश में हो रहे आन्दोलन को भी बल मिलेगा," इसी के साथ बीना डी' कोस्टा अपनी बात खत्म करती हैं। (53)

दुनिया भर के प्रमुख अखबारों ने पाकिस्तानी सैनिकों द्वारा की गई क्रूरता, आगजनी, बलात्कार और गर्भाधान के बारे में छापा। उन्होंने सेना के अत्याचारों को बयां करने के लिए "क्रुएल जेनोसाइड", "सैवेज फॉर्स", "प्रीमेडीटेटेड ब्रूटालिटी", "बर्निंग विलेजेज", "ओनली द डेड रिमेन", "आर्मी टेरर", "सैवेज स्लॉटर", "हैरोइंग एकाउंट्स", "विसीअस किलिंग", "ब्लडशेड एंड डिस्ट्रक्शंस", "कोल्ड ब्लडेड मर्डर", "अपैलिंग कैटेसट्रॉप", "मैसिव एक्सटरमिनेशन", "वाइड स्प्रेड डिवासटेशन", "जेनोसाइड", "सेवेज़ी" "रेन ऑफ टेरर", "जेनोसाइड ऑफ हिन्दूज" जैसे शीर्षक दिए। (54)

अगस्त 1971 में, अमेरिकी सांसद एडवर्ड केनेडी ने पश्चिम बंगाल, असम और त्रिपुरा के शरणार्थी शिविरों का दौरा किया, जहां पर मैं (ब्रिगेडियर आर.पी. सिंह) भी मौजूद था। नरसंहार के पीड़ितों की दर्दनाक आपबीती सुनकर वे बच्चे की तरह फूट–फूटकर रो पड़े। उनके अलावा अमेरिका के प्रमुख नागरिक और अन्य सांसदों, जैसे कोर्नेलिअस गेलेघर, फ्रैंक चर्च, विलियम सेक्स्बे और जे. डब्ल्यू. फुलब्राइट इत्यादि ने यह मुद्दा अमेरिकी संसद के अन्दर और बाहर उठाया। लेकिन अमेरिकी राष्ट्रपति निक्सन ने इस नरसंहार पर अपनी चुप्पी साधे रखी और युद्ध के दौरान पाकिस्तान को सैन्य मदद के साथ–साथ आर्थिक मदद भी प्रदान की। इसी प्रकार इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, जापान, ऑस्ट्रेलिया और अन्य छोटे–बड़े देशों के नेताओं और नागरिकों ने भी पाकिस्तानी सेना द्वारा किए गए नरसंहार के खिलाफ आवाज उठाई। लेकिन अमेरिकी और चीनी सरकार ने याह्या खान को हर संभव मदद दी।

30 नवम्बर 1971 को भारतीय और बांग्लादेशी सैन्य बलों की एक संयुक्त कमान का गठन किया गया। पूर्वी कमान के जनरल ऑफिसर कमांडिंग–इन–चीफ लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह को संयुक्त बल का कमांडर बनाया गया, जिसको जुक्तो बाहिनी (बंगाली में) नाम दिया गया। युद्ध में मुक्ति बाहिनी के जवानों की अगुवाई करने के लिए बांग्लादेशी अफसरों की कमी थी। नवम्बर 1971 के अंत तक इनकी संख्या करीब एक लाख पहुंच गई थी। ऐसे में सेना ने स्वयंसेवी (वालंटियर) अफसरों को मुक्ति बाहिनी के स्वतंत्रता सेनानियों की अगुवाई करने का प्रस्ताव दिया। केवल सिक्किम–तिब्बत सीमा पर तैनात अफसरों के दल या सेना के मुख्यालय में आरक्षित अफसर ही इसमें भाग ले सकते थे। सिर्फ दो ही अफसर इन अप्रशिक्षित और अपरिचित जवानों की अगुवाई करने के लिए तैयार हुए। चूँकि मेरा दल (यूनिट) 2 मराठा लाइट इन्फेंट्री, सेना के मुख्यालय में आरक्षित 123 माउंटेन ब्रिगेड का हिस्सा थी, मैं (ब्रिगेडियर आर.पी. सिंह) तैयार हो गया। मुझे एक मुक्ति बाहिनी दल के 850 गुरिल्लाओं की कमान सौंपी गई, जिन्होंने वीरतापूर्वक लड़ते हुए पाकिस्तानी सेना के कब्जे से उत्तर–पश्चिम बांग्लादेश के बड़े हिस्से को छुड़ाया। 10 दिसम्बर तक दुश्मन मैदान से भाग खड़ा हुआ।

"....10 दिसम्बर की दोपहर में जैसे ही हम जलढाका की ओर मोर्चा बढ़ा रहे थे, मुझे अल्फा सेक्टर मुख्यालय से एक सन्देश मिला कि दुश्मन ने शहर को खाली कर दिया है। जलढाका की बजाय मुझे मीरगंज जाने का आदेश मिला। उम्मीद के मुताबिक, वहां से भी दुश्मन सेना भाग गई थी। मैंने बोरागड़ी के संघर्ष में घायल हुए और ठाकुरगांव अस्पताल में भर्ती मुक्ति बाहिनी के दो लड़ाकों से मिलने का निर्णय लिया। मैंने अपने से दूसरे नंबर के अफसर को कमान सौंपी और मीरगंज की ओर बढ़ने का आदेश दिया। उसके बाद मैं ठाकुरगांव के एक स्वतंत्रता सेनानी के साथ मोटरबाइक पर सवार होकर अस्पताल की ओर रवाना हो गया। वहां मैं ऐसी दो घटनाओं का गवाह बना, जिन्होंने मेरे दिमाग पर गहरी छाप छोड़ी। पहली घटना ठाकुरगांव के केंद्र की थी। वहां मैंने एक बूढ़े व्यक्ति को अजीब बर्ताव करते हुए देखा। हमें मोटरबाइक पर देखकर वह हंसने लगा और नाच–गाने लगा। बाद में वह रोने लगा और बांग्ला में कुछ बड़बड़ाने लगा।

स्थानीय लोगों ने बताया कि वह विधुर है और उसके दो बेटे और एक बेटी थी। मार्च 1971 में सबसे बड़े बेटे की पाकिस्तानी सेना ने हत्या कर दी थी। छोटा बेटा सीमा पार भारत जाकर मुक्ति बाहिनी में शामिल हो गया था। वह बूढ़ा व्यक्ति अपनी बेटी के साथ पास की एक झोपड़ी

में रहता था। पाकिस्तानी सेना को अपने संपर्क सूत्रों से यह पता चल गया कि उसका छोटा बेटा स्वतंत्रता सेनानी बन गया है। एक रात सेना का एक दल उसके घर में घुस गया। जब सेना ने उस बूढ़े व्यक्ति से उसके छोटे बेटे के बारे में पूछा तो उसने बताया कि उसे कुछ भी पता नहीं है। उसके बाद सैनिकों ने उसे पीटना शुरू कर दिया। आवाजें सुनकर उसकी किशोरी बेटी बाहर आ गई। जब पाकिस्तानी सैनिकों को पता चला कि वह उस बूढ़े व्यक्ति की बेटी है तो वे उन दोनों को अन्दर कमरे में ले गए और उसे अपनी बेटी के साथ बलात्कार करने के लिए कहा। उन दोनों के कपड़े उतार दिए गए। बूढ़े व्यक्ति ने बार–बार सैनिकों से रहम की भीख मांगी लेकिन उन्होंने उसकी एक न सुनी। कुछ समय बाद, पाकिस्तानी जवानों के सेनापति ने बूढ़े व्यक्ति से कहा कि अब उसे सिखाया जाएगा कि कैसे एक महिला के साथ बलात्कार किया जाता है। उन्होंने उसे बांधा और उसके सामने ही उसकी बेटी के साथ सामूहिक बलात्कार किया। शुरुआत में वह किशोरी रोई लेकिन कुछ देर बाद वह बेहोश हो गई। पाकिस्तानी सैनिकों ने फिर बूढ़े व्यक्ति को खोल दिया और जोर से उसको लात मारी। वह वहीं पर ढेर हो गया और अपने होश गंवा बैठा। सैनिकों ने उन दोनों को उसी हालत में वहां छोड़ दिया। सुबह बूढ़े व्यक्ति ने देखा कि उसकी बेटी ने बाहर पेड़ से लटककर खुदकुशी कर ली। इस घटना के सदमे से वह पागल हो गया।

दूसरी घटना ठाकुरगांव अस्पताल की थी... मैंने अस्पताल में भर्ती मुक्ति बाहिनी के दो लड़ाकों से मुलाकात की। मुझसे मिलकर वे काफी खुश हुए। दोनों ही काफी तेजी से चोट से उबर रहे थे। मैंने डॉक्टर का शुक्रिया अदा किया। जैसे ही मैं वहां से निकल रहा था, तभी मैंने महिलाओं की चीखें सुनी। जब मैंने उनके बारे में डॉक्टर से पूछा तो पता चला कि वे खदान में विस्फोट से घायल हो गई थीं। जब मैं अन्दर गया तो वे दर्द से कराह रही थीं। मुझे पता चला कि वे किशोरियां चचेरी बहनें थीं। एक दिन ठाकुरगांव क्षेत्र का पाकिस्तानी कमांडर बलियादंगी के अपने दौरे से लौट रहा था, तभी उसकी नजर उन लड़कियों पर पड़ी। वह उन्हें अगवा कर अपनी कंपनी के मुख्यालय ले गया और हर रात उनके साथ बलात्कार किया। वहां पर बारूदी खदानों से घेराबंदी की गई थी ताकि वे भाग न पाएं। मुक्ति बाहिनी के किसी भी संदिग्ध या मुखबिर को वहां पर पकड़कर लाया जाता और तुरंत ही सजा सुना दी जाती थी। मुक्ति बाहिनी के लड़ाकों को उन्हीं खदानों पर चलने के लिए कहा जाता था। उनमें से ज्यादातर विस्फोट से उड़कर मर जाते थे, अगर कोई जिंदा बच जाता तो उसे गोली मार दी जाती। बंधक बनाई गई लड़कियों को ये सब कुछ देखने के लिए मजबूर किया जाता था।

4 दिसम्बर 1971 को जब संयुक्त बल ठाकुरगांव में पाकिस्तानी सेना पर हमले की तैयारी कर रहा था, तभी कंपनी के सेनापति (कमांडर) ने किशोरियों से खदान पर चलने को कहा। उन्होंने दया की भीख मांगी, लेकिन उसने अनसुना करते हुए उन्हें अपने स्टेनगन दिखाकर धमकी दी कि अगर उन्होंने उसका आदेश नहीं माना तो वह उन्हें गोली मार देगा। उसके निर्दयी स्वभाव से वाकिफ उन लड़कियों ने एक दूसरे का हाथ पकड़कर बारूदी खदानों पर चलना शुरू किया। एक लड़की का पांव बारूदी सुरंग पर पड़ गया और उसने विस्फोट के कारण अपना पैर गंवा दिया। दूसरी लड़की धमाके की आवाज से गिर पड़ी, जिससे उसकी रीढ़ की हड्डी टूट गई। इसी तरह की हजारों घटनाएं थीं, जिनमें पाकिस्तानी सैनिकों को निर्दय और क्रूर उत्पीडन में मजा आता था। "कैसे कोई किसी बेगुनाह इंसान के प्रति इतना निर्मम हो सकता है," आज तक यह प्रश्न मुझे कचोटता है।

16 दिसम्बर 1971 को पाकिस्तानी सशस्त्र बलों ने भारत और बांग्लादेश के संयुक्त बल के सेनापति के सामने सार्वजनिक रूप से आत्मसमर्पण कर दिया। पाकिस्तान पूर्वी कमान के जनरल ऑफिसर कमांडिंग–इन–चीफ, परास्त लेफ्टिनेंट जनरल ए.ए.के. नियाजी ने अपने पद के चिन्ह और पिस्टल उतारे और विजयी सेनापति (कमांडर) लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के सामने सिर झुकाकर उन्हें सौंप दिए। इसी के साथ बांग्लादेश में 267 दिनों तक नरसंहार करने वाले 93,500 पाकिस्तानी सैनिकों ने भी आत्मसमर्पण कर दिया और बांग्लादेश एक स्वतंत्र और संप्रभु राष्ट्र बन गया।

कुल 200 युद्ध अपराधियों (194 अफसर थल सेना के और तीन–तीन अफसर पाकिस्तानी वायु सेना और जल सेना के) की प्रमुख अपराधियों के रूप में पहचान की गई, जिनमें से पांच को मानवीय आधारों पर छोड़ दिया गया। इस पुस्तिका के लेखकों के पास युद्ध अपराधियों की सूची है। 10 जनवरी 1972 को पाकिस्तान की कैद से रिहा होते ही शेख मुजीबुर रहमान ने फौरन युद्ध अपराधों की कार्रवाई से संबंधित औपचारिक प्रक्रिया शुरू कर दी। 29 मार्च 1972 को, बांग्लादेश सरकार ने जनरल नियाजी और राव फरमान अली खान समेत 1100 पाकिस्तानी सेना के बंदियों पर कार्रवाई की घोषणा की। 14 जून 1972 को भारत नियाजी सहित 150 युद्ध के बंदियों (प्रिजनर्स ऑफ वॉर) को बांग्लादेश को सौंपने के लिए सहमत हो गया। जुल्फिकार अली भुट्टो और इंदिरा गांधी की शिमला मुलाकात से दस दिन पहले, 19 जून 1972 को, शेख मुजीब ने दोबारा युद्ध अपराधियों पर मुकदमा चलाने हेतु अपनी प्रतिबद्धता दिखाई। 2 जुलाई 1972 को शिमला समझौते पर हस्ताक्षर हुए, जिसमें युद्ध अपराधियों के बारे में कुछ भी जिक्र नहीं था जिन पर बांग्लादेश सरकार मुकदमा चलाना चाहती थी। क्योंकि यह बांग्लादेश–पाकिस्तान का आपसी मामला था। लेकिन भुट्टो ने अपनी शैतानी चाल चली और इंदिरा गांधी से युद्ध अपराधियों की रिहाई के लिए कुछ आश्वासन ले लिया। इस्लामाबाद लौटने के फौरन बाद उसने पश्चिमी पाकिस्तान में रह रहे 4,00,000 बांग्लादेशियों पर उनके देश जाने पर पाबंदी लगा दी। वह उनका इस्तेमाल पाकिस्तानी युद्ध अपराधियों की रिहाई के लिए प्यादों के रूप में करना चाहता था। पश्चिम पाकिस्तान में सेवारत बांग्लादेशी सैनिकों को "बंदी शिविरों" (कंसंट्रेशन कैंप) में डाल दिया गया।

10 अगस्त 1972 को एक प्रेस वार्ता में भुट्टो ने कहा कि बांग्लादेश ने सोचा कि "उसके पास हमारे कैदियों की रिहाई को लेकर वीटो (विशेष अधिकार) है, लेकिन हमारे पास भी वीटो का अधिकार है।" उसने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के नए सदस्य चीन से अनुरोध किया कि वो बांग्लादेश को परिषद का सदस्य बनने के विरोध में अपने वीटो अधिकार का प्रयोग करे। युद्ध–त्रस्त देश के लिए सुरक्षा परिषद् की सदस्यता बहुत आवश्यक थी। 25 अगस्त 1972 को चीन ने सुरक्षा परिषद में पहली बार अपना वीटो बांग्लादेश की सदस्यता के विरोध में प्रयोग किया। भुट्टो इस बात पर अडिग थे कि पाकिस्तान तभी बांग्लादेश के अस्तित्व को स्वीकार करेगा जब सभी पाकिस्तानी बंदियों को रिहा किया जाएगा। नवम्बर 1972 में बांग्लादेश और भारत ने पाकिस्तानी बंदियों के करीब 6,000 परिजनों को स्वदेश भेजने का फैसला किया। इसके बदले पाकिस्तान 10,000 बांग्लादेशी महिलाओं और बच्चों की रिहाई के लिए तैयार हो गया। हालांकि, पाकिस्तान में फंसे ज्यादातर बांग्लादेशियों का भविष्य अनिश्चित था। चार दिन तक चली द्विपक्षीय वार्ता के बाद 17 अप्रैल 1973 को बांग्लादेश और भारत ने कैदी–गतिरोध को समाप्त करने के लिए "समकालिक प्रत्यावर्तन" (साइमलटेनियस

रिपेट्रिएशन) पहल की घोषणा की। हालांकि, बांग्लादेश ने साफ किया कि भारत उन बंदियों को नहीं छोड़ेगा जिन पर वो मुकदमा चलाएगा।

भुट्टो ने आग बबूला होकर बांग्लादेश में पाकिस्तानी अभियुक्तों पर मुकदमा चलाने के फैसले को सिरे से नकार दिया। उसने धमकी दी कि अगर बांग्लादेश पाकिस्तानी बंदियों पर मुकदमा करेगा तो पाकिस्तान भी वहां रह रहे बांग्लादेशियों पर ऐसे ही मुकदमे चलाएगा। 27 मई 1973 को एक साक्षात्कार में भुट्टो ने कहा, "जनमत की मांग के अनुसार यहां बांग्लादेशियों पर कार्रवाई होगी... हम जानते हैं कि बांग्लादेशी लोगों ने युद्ध के दौरान मुखबिरी की थी। इसमें विशिष्ट अभियोग के तहत उन पर मुकदमे चलाए जाएंगे। कितने लोगों पर कार्रवाई होगी, मैं कह नहीं सकता।" अपनी धमकी को सही साबित करने के लिए पाकिस्तानी सरकार ने तुरंत 203 बंगालियों को पकड़कर "बंधक" (वर्चुअल होस्टेजेज) बना दिया। भुट्टो ने तर्क दिया कि अगर "बांग्लादेश ने किसी भी युद्ध बंदी पर मुकदमा चलाया तो जो पाकिस्तानी पहले से ही 'काफी नाराज' थे, वे पाकिस्तान की सत्ता को उखाड़ फेकेंगे।" भुट्टो ने 2 जुलाई 1972 को शिमला में इंदिरा गांधी को यही बात बताई थी। उसने दावा किया कि उसकी सरकार ने तख्तापलट की साजिश रचने वाले कुछ शीर्ष पदासीन सैन्य अधिकारियों को गिरफ्तार भी किया था।

28 अगस्त 1973 को भारत और पाकिस्तान ने दिल्ली समझौते पर हस्ताक्षर किए, जिसमें बांग्लादेश–भारत के "समकालिक प्रत्यावर्तन" प्रस्ताव को अंतिम रूप दिया गया। इसके चलते डेढ़ वर्ष से पाकिस्तान और भारत में फंसे बंगालियों और पाकिस्तानियों को रिहा कर दिया गया। यह त्रिपक्षीय प्रत्यावर्तन 18 सितम्बर 1973 को शुरू हुआ। पाकिस्तान और भारत इस बात पर सहमत हो गए कि 195 पाकिस्तानी अभियुक्तों का मामला बांग्लादेश और पाकिस्तान के बीच में ही हल होगा। पाकिस्तान ने 203 बांग्लादेशियों को प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया से अलग रखा। उससे पहले अप्रैल 1973 के अंतिम सप्ताह में पाकिस्तान ने एक बयान जारी किया था जिसमें लिखा था, "पाकिस्तान सरकार ढाका में सत्ताधारियों को यह अधिकार नहीं देती है कि वो एक भी युद्ध बंदी के खिलाफ आपराधिक मामलों के अंतर्गत मुकदमा चलाए, क्योंकि ये कथित आपराधिक कृत्य पाकिस्तान की भौगोलिक सीमा के अन्दर पाकिस्तानी नागरिकों द्वारा किए गए थे। लेकिन पाकिस्तान अभियुक्तों के खिलाफ कार्रवाई के लिए अपने यहां एक न्यायाधिकरण का गठन करेगा।" इससे माहौल थोडा शांत हुआ।

करीब एक साल बाद पाकिस्तान में फंसे बंगालियों को छुड़ाने और संयुक्त राष्ट्र परिषद की सदस्यता के लिए आखिरकार बांग्लादेश ने पाकिस्तान के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। पाकिस्तान द्वारा युद्ध अपराधियों के खिलाफ कार्रवाई करने के आश्वासन पर भरोसा जताते हुए बांग्लादेश, ढाका में उनके खिलाफ मुकदमा न चलाने की शर्त मान गया। 24 मार्च 1974 को आपसी समझ से 203 नजरबंद बांग्लादेशियों के आखिरी समूह को स्वदेश लौटने की अनुमति दे दी गई। 10 अप्रैल 1974 को बांग्लादेश, भारत और पाकिस्तान के बीच त्रिपक्षीय समझौते के बाद बांग्लादेश की स्थिति सामान्य हो पाई। उसी दिन पाकिस्तान ने बांग्लादेश से माफी मांगी। त्रिपक्षीय समझौते में लिखा गया कि भुट्टो बांग्लादेश का दौरा करेंगे और "वहां के लोगों से अपील करेंगे कि आपसी सुलह स्थापित करने के लिए वे अतीत में हुई गलतियों को माफ करें और भूल जाएं।" युद्ध अपराधियों को "क्षेत्र में शान्ति के एक युग की शुरुआत करने" की भावना के साथ रिहा कर दिया गया।

युद्ध अपराधियों को पाकिस्तान को सौंपना शेख मुजीबुर रहमान और इंदिरा गांधी की सबसे बड़ी गलती थी। युद्ध अपराधियों में से कुछ ही वरिष्ठ अधिकारियों को पाकिस्तान द्वारा अभियुक्त बनाया गया। लेकिन उन्हें भी युद्ध अपराधों के बजाय सिर्फ पेशेवर अक्षमता के मामले में अभियुक्त बनाया गया। बाकि सभी युद्ध अपराधी पाकिस्तानी सेना में सेवारत रहे और उनमें से कुछ तो मेजर जनरल और लेफ्टिनेंट जनरल जैसे ऊंचे पदों तक पहुंचे। 15 अगस्त 1975 को शेख मुजीबुर रहमान और उनके परिजनों की हत्या करने की आईएसआई–सीआईए की साजिश के मुख्य षड़यंत्रकर्ता भी यही अफसर थे। पंजाब में पनपे सिख उग्रवाद के पीछे भी उन्हीं का हाथ था, जिसके परिणामस्वरूप 31 अक्टूबर 1984 को भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या हुई थी। 1977 में जनरल जिया–उल–हक ने भुट्टो सरकार का सैन्य तख्तापलट कर दिया, जिसमें उन्हीं युद्ध अपराधियों ने प्रमुख भूमिका निभाई थी। 1978 में जिया–उल–हक ने जम्मू–कश्मीर पर कब्जा करने के मकसद से उग्रवाद शुरू करने और भारत को सैन्य एवं आर्थिक चोट पहुंचाने के लिए "ऑपरेशन टोपेक" लॉन्च किया। "ऑपरेशन टोपेक" के कार्यान्वन में भी वही अफसर मुख्य भूमिका में थे। साथ ही उन अफसरों ने अफगानिस्तान में शरीयत शासन स्थापित करने के उदेश्य से तालिबान को प्रशिक्षित करने के लिए एक मुख्य समूह का गठन किया। इस प्रकार क्षेत्र में शांति–युग स्थापित करने के बजाय उन्होंने आतंकवाद के युग की स्थापना की।

पाकिस्तान ने युद्ध अपराधियों पर मुकदमा चलाने की अपनी प्रतिबद्धता नहीं निभाई। बांग्लादेश से लूटी गई संपदा पर आज भी 100 से अधिक युद्ध अपराधी ऐश कर रहे हैं। समय आ गया है कि अब जिम्मेदार नागरिक सोशल मीडिया जैसे माध्यमों के प्रयोग से उन अपराधियों पर कार्रवाई करने की लोगों में आम सहमति बनाएं। भारत और बांग्लादेश की सरकार के हाथ त्रिपक्षीय समझौते के कारण बंधे हुए हैं। अगर नाजियों पर इतने समय बाद 2016 में कार्रवाई हो सकती है और जापानियों को द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के 70 साल बाद भी कोरियाई सेक्स गुलामों से माफी मांगने एवं उन्हें हर्जाना अदा करने के लिए मजबूर किया जा सकता है, तो बांग्लादेश में 1971 के नरसंहार के अपराधियों पर भी महज 48 साल बाद इसी तरह की कार्रवाई बिल्कुल जायज है।

किसी के पास भी पाकिस्तानी युद्ध अपराधियों को रिहा करने का कोई अधिकार नहीं था क्योंकि उन्होंने मानवता को तार–तार किया था। इसीलिए हर इंसान का यह दायित्व बनता है कि वह जिंदा बचे इन अपराधियों पर अंतर्राष्ट्रीय न्यायाधिकरण के तहत सजा दिलवाने के लिए अपनी आवाज उठाए। विश्व समुदाय को चाहिए कि पाकिस्तान को 1971 के ऑपरेशन सर्चलाइट के दौरान किए गए उसके अपराधों के लिए बिना शर्त माफी मांगने और हर्जाना अदा करने के लिए विवश करे और 1971 के नरसंहार और बलात्कार के पीड़ितों को न्याय सुनिश्चित करे।

1971 भारत–पाक युद्ध के नायक लेफ्टिनेंट जनरल जगजीत सिंह अरोड़ा के साथ बंगबंधु शेख मुजीबुर रहमान अपने आवास पर। (दिनांक 13 जनवरी 1972)

पलायन–नवंबर 1971 तक भारत में बांग्लादेश से आए शरणार्थियों की संख्या एक करोड़ से अधिक हो गई थी। चित्र में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी बांग्ला शरणार्थियों के साथ
(फोटो सौजन्य : द हिन्दू)

कुछ बीरांगनाएं जिन्हें स्वतंत्रता सेनानी के रूप में स्वीकार्यता मिली पाकिस्तानी सेना द्वारा 1971 के बांग्लादेश मुक्ति के संघर्ष में इन बीरांगनाओं पर असहनीय अत्याचार किए गए।
(फोटो सौजन्य : एशियन एज)

कलकत्ता स्थित बांग्लादेशी शरणार्थी शिविर का दौरा करते हुए अमेरिकी सीनेटर एडवर्ड कैनेडी। (फोटो सौजन्यः द डेली स्टार)

संदर्भ

1. Siddiq Salik, Witness to surrender, University Press, Dhaka, pp. 60-61
2. S A Karim, ...
3. Air Marshal (Retired) M Asghar Khan, op. sit. p. 42
4. Siddiq Salik, op. sit. pp.87-88
5. Siddiq Salik, op. sit. pp.88-89
6. Bangladesh Documents, op. sit. pp. 380-385
7. Bangladesh Documents, op. sit. pp. 388-391
8. Bangladesh Documents, op. sit. pp. 392-400
9. Bangladesh Documents, op. sit. p.400
10. U.S. Consulate (Dacca) Cable, Selective genocide, March 27, 1971
11. U.S. Consulate (Dacca) Cable, 'Dissent from U.S. Policy towards East Pakistan', April 6, 1971, Confidential, 5 pp. Includes Signatures from the Department of State. Source: US Papers-RG 59, SN 70-73 Pol and Def. From: Pol Pak-U.S. To: Pol 17-1 Pak-U.S Box 2535
12. Bangladesh Documents, op. sit. pp. 349-351
13. Bangladesh Documents, op. sit. pp. 357
14. Neville Anthony Mascarenhas, The Sunday Times, London, 13 June 1971.
15. Ibid.
16. Ibid.
17. Ibid.

18. Ibid.

19. Ibid.

20. Bangladesh Documents, op. sit. p. 369

21. Ibid.

22. Neville Anthony Mascarenhas, op. sit.

23. Uban, SS Major General, 'Phantoms of Chittagong: The "Fifth Army" in Bangladesh', Allied Publishers Private Limited, New Delhi, 1985, pp. 49-50.

24. Uban, SS Major General, op. sit. pp. 50-51

25. Uban, SS Major General, op. sit. pp. 51-52

26. Uban, SS Major General, op. sit. pp. 52-53

27. Report of the International Rescue Committee Emergency Mission to India for Pakistan Refugees, submitted on 28 July 1971, by its Chairman Mr. Angier Biddle Duke to Mr. F. L. Kellog, Special Assistant to the Secretary of the State for Refugees Affairs, Government of USA.

28. Ibid.

29. Bangladesh Documents, op.sit. pp. 612-649; and Hasan Zaheer, op. sit. pp. 237-272.

30. Ibid.

31. The Guardian, London, 27 May 1971.

32. Statements at UNHCR dated 12 May 1971

33. Hasan Zaheer, op. sit. pp. 257-258

34. Hasan Zaheer, op. sit. p. 254

35. Bangladesh Documents, Volume II pp. 65-68

36. Bangladesh Documents Volume II, op. sit. pp. 68-69

37. Ibid.

38. Bangladesh Documents, Volume II, op. sit. pp. 69-70

39. Bangladesh Documents, Volume II, op. sit. pp. 70-71

40. Bangladesh Documents, Volume II pp. 71-72

41. Gerlach Christian, 'Extreme Violent Societies: Mass Violence in Twentieth Century World', Cambridge University Press, London, 2010

42. Ibid.

43. References: 1 Chalk, Frank and Kurt Jonassohn, 'The History and Sociology of Genocide: Analysis and Case Studies', Yale University Press (3rd Edition) 1990; 2 Rounnaq Jahan, 'Genocide in Bangladesh' Garland Publishing, New York, 1997; 3 Samuel Totten and William Parsons, 'Century of Genocide: Critical Essays and Eye Witness Accounts', (3rd Edition) Routledge, 2008; 4 Rummel RJ, 'Death by Governments: Genocides and Mass Murders since 1900', Transaction Publishers, New Jersey, USA, 1997; 5 Martin Lucas Belen, 'Feminism, Literature and Rape Narratives: Violence and Violation', Routledge, London, 2008; 6 Jenneke Aren, 'Genocide in Chittagong Hill Tracts: Bangladesh 2010', Eks slakenns Trykkins, Copenhagen, Denmark; 2012; 7 John Adams, 'Genocide: A Comprehensive Introduction', Routledge/ Taylor and Francis Publishers, New York, 2010

44. Hamood-Ur Rahman Commission Supplementary Report to the Commission's Official Inquiry into the 1971 India-Pakistan War, submitted in 1974 and Released by the Government of Pakistan, in 2007

45. Dr. Nilima Ibrahim, 'Amhi Birangona Bolchi', Jagriti Prokashony, Dhaka; 2003.

46. Ibid.

47. Ibid.

48. Bina D'Costa, 'Marginalized identity: new frontiers of research for International Relations', Chapter 7 of 'Feminist Methodologies for International Relations', edited by Brooke A. Ackerly, Cambridge University Press, UK, 2010; and Bina D' Costa, 'Redress for Sexual Violence Before the International Crimes Tribunal in Bangladesh: Lessons from History, and Hopes for the Future', Springer Netherlands, 2010.

49. Bina D'Costa, 'Victory's Silence' Daily Star, Dhaka, 4 December 2014.

50. Bina D'Costa and Sarah Hossain, op. sit.

51. Ibid.

52. Ibid.

53. Ibid.

54. Bangladesh Documents, op. Sit. Pp.434-445.

फोटो स्रोत

1. https://assamchronicle.combangladesh-genocide
2. http://sindianexpress.comarticleresearchbirth-of-bangladesh-when-raped-women-and-war-babies-paid-the-price-of-a-new-nation-victory-day-4430420
3. https://newsin.asiahasina-claims-indias-support-un-recognition-march-25-genocide-dayoperation-searchlight-march-25-1971
4. https://thewire.inhistorythe-untold-story-behind-indira-gandhis-decision-to-release-93000-pakistani-pows-after-the-bangladesh-war
5. https://unb.com.bdcategoryBangladesh1971-genocide-in-bangladesh-govt-efforts-on-to-have-un-recognition15202
6. https://www.aljazeera.comindepthopinion2011052011598 3958114219.html
7. https://www.indiatimes.comnewsworldwhy-we-should-never-forget-the-1971-genocide-in-bangladesh-that-changed-the-history-of-indian-subcontinent-248459.html
8. https://www.ssbcrack.com201511all-you-need-to-know-about-the-1971-war-crimes.html
9. http://www.srilankaguardian.org201803commemorating-25-march-as-bangladeshs.html
10. https://www.theguardian.comcommentisfree2011may21ian-jack-bangladesh-war-genocide
11. https://www.thedailystar.netmonth-victorywatch-now-pakistan-lying-about-1971-genocide-185098

ब्रिगेडियर आर.पी. सिंह, विशिष्ट सेवा मेडल (रिटायर्ड), 1971 के बांग्लादेश मुक्ति संग्राम में पहले दिन, 26 मार्च 1971 से अंतिम दिन, 16 दिसम्बर 1971, तक भारतीय सेना के एक युवा अधिकारी के रूप में सक्रिय रहे। प्रारम्भ में मार्च–अप्रैल में उन्हें भारत–बांग्लादेश सीमा की निगरानी का दायित्व दिया गया। इसके पश्चात उन्हें नागरिक प्रशासन के साथ मिलकर बांग्ला शरणार्थियों के लिए रहने की व्यवस्था और शरणार्थी शिविरों के सुचारू प्रबन्धन का जिम्मा दिया गया। जुलाई 1971 में उन्हें पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के मूर्ति कैम्प में अल्फा सेक्टर में मुक्ति बाहिनी के लड़ाकों को प्रशिक्षित करने के लिए ऑफिसर्स ट्रेनिंग विंग में प्रशिक्षक नियुक्त कर दिया गया। वहां उन्होंने भावी बांग्लादेश सेना के 132 अधिकारियों को युद्ध कौशल के प्रथम व द्वितीय कोर्स की ट्रेनिंग दी। बांग्लादेश की वर्तमान प्रधानमंत्री शेख हसीना के भाई शहीद कैप्टन शेख कमाल, इन्हीं में से एक प्रशिक्षु कैडेट थे।

30 नवम्बर 1971 को भारत व बांग्लादेश की संयुक्त कमांड के गठन के बाद उन्होंने मुक्ति बाहिनी के गुरिल्ला सैनिकों का नेतृत्व करने हेतु अपने अधिकारियों से सम्पर्क किया। इस पहल पर उन्हें मुक्ति बाहिनी के 850 स्वाधीनता सेनानियों की एक टुकड़ी की कमांड सौंपी गई, जिनका नेतृत्व करते हुए उन्होंने उत्तर–पश्चिमी बांग्लादेश के रंगपुर सेक्टर में विशाल क्षेत्र को पाकिस्तानी सेना के नियंत्रण से मुक्त करा दिया। इस प्रकार उन्होंने बांग्लादेश मुक्ति युद्ध के विभिन्न आयामों को करीबी से देखा। इतना व्यापक अवसर किसी अन्य अधिकारी को नहीं मिला।

ब्रिगेडियर सिंह नीलगिरी (ऊटी) की पहाड़ियों में स्थित डिफेंस सर्विसेज स्टाफ कॉलेज, वेलिंग्टन तथा नई दिल्ली स्थित प्रतिष्ठित नेशनल डिफेंस कॉलेज के प्रशिक्षु रहे हैं। 26 जनवरी, 2001 को उनकी "उच्च कोटि की विशिष्ट सेवाओं" के लिए भारत के राष्ट्रपति ने विशिष्ट सेवा मेडल से सम्मानित किया।

भारतीय सेना में 36 वर्षों की सराहनीय सेवा के उपरांत उन्होंने हितेश सिंह के साथ मिलकर "लिबरेशन वॉर : फ्रॉम ईस्ट पाकिस्तान टू बांग्लादेश" पुस्तक का लेखन किया है। यह पुस्तक ढाका स्थित जर्नीमैन बुक्स द्वारा प्रकाशित हुई है तथा 26 मार्च 2020 को बांग्लादेश नरसंहार के 50वें वर्ष की शुरुआत होने पर जारी की जाएगी।

हितेश सिंह मानवाधिकार कानून में डिप्लोमा व रक्षा अध्ययन में स्नातकोत्तर हैं। उन्होंने "लिबरेशन वॉर : फ्रॉम ईस्ट पाकिस्तान टू बांग्लादेश" पुस्तक का सह–लेखन किया है। वर्तमान में वह बांग्लादेश मुक्ति संग्राम पर आधारित एक टीवी धारावाहिक की पटकथा का लेखन कर रहे हैं। वह विभिन्न समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं में स्तंभ लेखन भी करते हैं।

भारत नीति प्रतिष्ठान
India Policy Foundation
डी–51, प्रथम तल, हौज खास, नई दिल्ली–110016
दूरभाष : 011–26524018 • फैक्स : 011–46089365
ईमेल: info@ipf.org.in, indiapolicy@gmail.com,
वेबसाइट: www.ipf.org.in

ISBN : 978-93-84835-32-3
9789384835323

मूल्य: ₹100/-